प्राकृत गद्य-पद्य सौरभ

(भाग - २)

डॉ. कमलचन्द सोगाणी

अपभ्रंश साहित्य अकादमी
जैनविद्या संस्थान
दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी
राजस्थान

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्राकृत गद्य-पद्य सौरभ

(भाग - 2)

डॉ. कमलचन्द सोगाणी
(पूर्व प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र)
सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर

प्रकाशक
अपभ्रंश साहित्य अकादमी
जैनविद्या संस्थान
दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी
राजस्थान

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

■ प्रकाशक
अपभ्रंश साहित्य अकादमी
जैनविद्या संस्थान
दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी
श्री महावीरजी - 322 220 (राजस्थान)

■ प्राप्ति स्थान
1. जैनविद्या संस्थान, श्री महावीरजी
2. साहित्य विक्रय केन्द्र
दिगम्बर जैन नसियाँ भट्टारकजी
सवाई रामसिंह रोड, जयपुर - 302 004

■ प्रथम संस्करण, 2005, 1000

■ मूल्य 70.00

■ पृष्ठ संयोजन
आयुष ग्राफिक्स
डी-173-(ए), विनीत मार्ग
बापू नगर, जयपुर - 302 015
दूरभाष : 141-2708265, मो. 9414076708

■ मुद्रक
जयपुर प्रिण्टर्स प्रा. लि.
एम.आई. रोड, जयपुर - 302 001

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अनुक्रमणिका

पाठ संख्या	विषय	पृष्ठ संख्या
	आरम्भिक	
1.	वज्जालग्ग	2
2.	गउडवहो	16
3.	दशवैकालिक	22
4.	आचारांग	30
5.	प्रवचनसार	38
6.	भगवती आराधना	42
7.	अर्हत प्रवचन	50
8.	महुबिन्दु दिट्ठंतं	54
9.	रोहिणीणाए	56
10.	मेरुप्रभ हाथी	62
11.	सिप्पिपुत्तस्स कहा	66
12.	पुत्तेहिं पराभविअस्स पिउस्स कहा	68

व्याकरणिक विश्लेषण एवं शब्दार्थ

1.	वज्जालग्ग	75
2.	गउडवहो	103
3.	दशवैकालिक	116
4.	आचारांग	131
5.	प्रवचनसार	148
6.	भगवती आराधना	156
7.	परिशिष्ट	175
8.	सन्दर्भ ग्रन्थ सूची	181

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आरम्भिक

'प्राकृत गद्य-पद्य सौरभ, भाग – 2' पाठकों के हाथों में समर्पित करते हुए हमें हर्ष का अनुभव हो रहा है।

प्राकृत भाषा भारतीय आर्यभाषा परिवार की एक सुसमृद्ध लोक भाषा रही है। स्वभावसिद्ध जन सामान्य की भाषा को प्राकृत कहते हैं। इसी जनभाषा प्राकृत में बुद्ध और महावीर ने साधारण जनता के हितार्थ उपदेश दिया।

जनभाषा प्रवाहशील होती है। प्राकृत भाषा ही अपभ्रंश के रूप में विकसित होती हुई प्रादेशिक भाषाओं एवं हिन्दी का स्रोत बनी। अतः हिन्दी एवं अन्य सभी उत्तर भारतीय भाषाओं के इतिहास के अध्ययन के लिए प्राकृत व अपभ्रंश का अध्ययन आवश्यक है।

यह एक सार्वजनीन सिद्धान्त है कि किसी भी भाषा का ज्ञान प्राप्त करना रचना और अनुवाद की शिक्षा के बिना कठिन है। प्राकृत भाषा के सीखने-समझने को ध्यान में रखकर ही 'प्राकृत रचना सौरभ', 'प्राकृत अभ्यास सौरभ', 'प्रौढ प्राकृत रचना सौरभ', 'प्राकृत गद्य-पद्य सौरभ भाग – 1' का प्रकाशन किया जा चुका है। इसी क्रम में प्राकृत के विभिन्न ग्रन्थों से पद्यांशों व गद्यांशों का चयन किया गया है। उनके हिन्दी अनुवाद, व्याकरणिक विश्लेषण एवं शब्दार्थ प्रस्तुत किये गये हैं। इससे प्राकृत भाषा को सीखने के साथ-साथ काव्यों का रसास्वादन भी किया जा सकेगा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी द्वारा संचालित 'जैनविद्या संस्थान' के अन्तर्गत 'अपभ्रंश साहित्य अकादमी' की स्थापना सन् 1988 में की गई थी। वर्तमान में इसके माध्यम से प्राकृत-अपभ्रंश का अध्यापन, पत्राचार के माध्यम से कराया जाता है। आशा है 'प्राकृत गद्य-पद्य सौरभ भाग – 2' प्राकृत जिज्ञासुओं के लिए उपयोगी सिद्ध होगी।

पुस्तक-प्रकाशन के लिए अपभ्रंश साहित्य अकादमी के विद्वानों एवं प्राकृत भारती अकादमी के विद्वानों के आभारी हैं।

मुद्रण के लिए जयपुर प्रिण्टर्स प्राइवेट लिमिटेड धन्यवादार्ह हैं।

नरेशकुमार सेठी	**नरेन्द्र पाटनी**	**डॉ. कमलचन्द सोगाणी**
अध्यक्ष	मंत्री	संयोजक
प्रबन्धकारिणी कमेटी		जैनविद्या संस्थान समिति
दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी		जयपुर

तीर्थंकर महावीर मोक्ष कल्याणक दिवस
कार्तिक अमावस्या, वीर निर्वाण सम्वत् 2062
1.11.2005

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्राकृत गद्य-पद्य सौरभ

(भाग - 2)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ - 1

वज्जालग्ग

1. तं किं पि साहसं साहसेण साहंति सप्पहससहावा।
जं भाविऊण दिव्वो परंमुहो धुणइ नियसीसं।।

2. जह जह न समप्पइ विहिवसेण विहडंतकज्जपरिणामो।
तह तह धीराण मणे वड्ढइ बिउणो समुच्छाहो।।

3. फलसंपत्तीइ समोणयाइ तुंगाइ फलविपत्तीए।
हिययाइ सुपुरिसाणं महातरूणं व सिहराइं।।

4. हियए जाओ तत्थेव वड्ढिओ नेय पयडिओ लोए।
ववसायपायवो सुपुरिसाण लक्खिज्जइ फलेहिं।।

5. ववसायफलं विहवो विहवस्स य विहलजणसमुद्धरणं।
विहलुद्धरणेण जसो जसेण भण किं न पज्जत्तं।।

6. आढत्ता सप्पुरिसेहि तुंगववसायदिन्नहियएहिं।
कज्जारंभा होहिंति निप्फला कह चिरं कालं।।

7. विहवक्खए वि दाणं माणं वसणे वि धीरिमा मरणे।
कज्जसए वि अमोहो पसाहणं धीरपुरिसाणं।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ - 1

वज्जालग्ग

1. साहस (जिनका) स्वभाव (है), (वे) साहस से कुछ भी उस साहस (कार्य) को सिद्ध करते हैं, जिस (साहस कार्य) को विचारकर दैव (भी) उदासीन (हो जाता है) (तथा) निज शीश को (प्रशंसा में) हिलाता है।

2. जैसे-जैसे कार्य का (इच्छित) परिणाम विधि की अधीनता से बिगड़ता हुआ होने के कारण पूरा नहीं किया जाता, वैसे-वैसे धीरों के मन में दुगना, अचल उत्साह बढ़ता है।

3. सज्जन पुरुषों के हृदय महावृक्षों के शिखरों की तरह फलों की प्राप्ति होने पर बहुत झुके हुए (होते हैं) (तथा) फलों के नाश होने पर (वे) ऊँचे (हो जाते हैं)।

4. सज्जन पुरुषों का संकल्परूपी वृक्ष (उनके) मन में (ही) उत्पन्न हुआ है, (उनके द्वारा) वहाँ ही बढ़ाया गया है, लोक में (उनके द्वारा) कभी प्रकट नहीं किया गया है, (किन्तु वह) फलों (परिणामों) द्वारा ही पहचाना जाता है।

5. संकल्प का परिणाम सम्पत्ति (है) और सम्पत्ति का (परिणाम) व्याकुल जनों का उद्धार है, व्याकुलों के उद्धार से यश (प्राप्त होता है), (तुम) कहो, यश से क्या प्राप्त किया हुआ नहीं है ?

6. हृदय से उच्च कर्म में स्थापित सज्जन आत्माओं द्वारा शुरू किए हुए कार्यों के लिए प्रयत्न दीर्घकाल तक कैसे निष्फल होंगे ?

7. वैभव के क्षय होने पर भी उदारता, विपत्ति में भी आत्मसम्मान, मरण (काल) में भी धैर्य (तथा) सैकड़ों प्रयोजनों में भी अनासक्त (भाव-) धीर पुरुषों के (ये) भूषण हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

8. दारिद्दय तुज्झ गुणा गोविज्जंता वि धीरपुरिसेहिं।
पाहुणएसु छणेसु य वसणेसु य पायडा हुंति।।

9. दारिद्दय तुज्झ नमो जस्स पसाएण एरिसी रिद्धी।
पेच्छामि सयललोए ते मह लोया न पेच्छंति।।

10. जे जे गुणिणो जे जे वि माणिणो जे वियड्ढसंमाणा।
दालिद्द रे वियक्खण ताण तुमं साणुराओ सि।।

11. दीसंति जोयसिद्धा अंजणसिद्धा वि के वि दीसंति।
दारिद्दजोयसिद्धं मं ते लोया न पेच्छंति।।

12. संकुयइ संकुयंते वियसइ वियसंतयम्मि सूरम्मि।
सिसिरे रोरकुडुंबं पंकयलीलं समुव्वहइ।।

13. ओलग्गिओ सि धम्मम्मि होज्ज एण्हिं नरिंद वच्चामो।
आलिहियकुंजरस्स व तुह पहु दाणं चिय न दिट्ठं।।

14. भग्गे वि बले वलिए वि साहणे सामिए निरुच्छाहे।
नियभुयविक्कमसारा थक्कंति कुलुग्गया सुहडा।।

15. वियलइ धणं न माणं झिज्जइ अंगं न झिज्जइ पयावो।
रूवं चलइ न फुरणं सिविणे वि मणंसिसत्थाणं।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

8. हे निर्धनता ! तुम्हारे गुण धीर पुरुषों के द्वारा छुपाए जाते हुए भी अतिथियों (की उपस्थिति) में, उत्सवों पर और कष्टों के होने पर प्रकट हो जाते हैं।

9. हे निर्धनता ! तुम्हारे लिए नमस्कार, (क्योंकि) जिसके (तुम्हारे) प्रसाद से ऐसी ऋद्धि (मिली) (है) (कि) (मैं) सब लोगों को देखता हूँ, (पर) वे (सब) लोग मुझे नहीं देखते हैं।

10. हे निपुण निर्धनता ! जो जो गुणी (हैं), जो जो भी आत्म-सम्मानी (हैं), जिन्होंने विद्वानों में सम्मान (पाया है), तुम उनके लिए अनुराग सहित होती हो।

11. योग-सिद्ध देखे जाते हैं, कितने ही अंजण-सिद्ध भी देखे जाते हैं, (किन्तु) वे मनुष्य मुझ दारिद्र-योग-सिद्ध को नहीं देखते हैं।

12. सर्दी में गरीब कुटुम्ब कमल की लीला को धारण करता है। (वह) अस्त होते हुए सूर्य में सिकुड़ जाता है (और) उदय होते हुए (सूर्य में) फैल जाता है।

13. (तुम) धर्म में अनुलग्न हो, रहो ! हे राजा ! अब (हम) जाते हैं, (क्योंकि) हे प्रभो! तुम्हारी उदारता कभी नहीं देखी गई, जैसे चित्रित हाथी के (मस्तक से टपकने वाला रस कभी नहीं देखा गया है)।

14. युद्ध-शक्ति के खण्डित होने पर, सेना के घिरे हुए होने पर (और) स्वामी के उत्साह-रहित (किये गए) होने पर उच्च कुलों में उत्पन्न योद्धा निज भुजाओं के पराक्रम बल से (ही) स्थिर रहते हैं।

15. दृढ़-संकल्प वाले दल (सुभटों) का (यदि) धन क्षीण होता है, (तो) स्वप्न में भी आत्म-सम्मान (क्षीण) नहीं (होता), शरीर (यदि) क्षीण होता है, (तो स्वप्न में भी) प्रताप क्षीण नहीं होता, (यदि) रूप नष्ट होता है, (तो स्वप्न में भी) स्फूर्ति (नष्ट) नहीं (होती)।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

16. हंसो सि महासरमंडणो सि धवलो सि धवल किं तुज्झ।
खलवायसाण मज्झे ता हंसय कत्थ पडिओ सि।।

17. हंसो मसाणमज्झे काओ जइ वसइ पंकयवणम्मि।
तह वि हु हंसो हंसो काओ काओ च्चिय वराओ।।

18. बे वि सपक्खा तह बे वि धवलया बे वि सरवरणिवासा।
तह वि हु हंसबयाणं जाणिज्जइ अंतरं गरुयं।।

19. एक्केण य पासपरिट्ठिएण हंसेण होइ जा सोहा।
तं सरवरो न पावइ बहुएहि वि ढिंकसत्थेहिं।।

20. माणससररहियाणं जह न सुहं होइ रायहंसाणं।
तह तस्स वि तेहि विणा तीरुच्छंगा न सोहंति।।

21. वच्चिहिसि तुमं पाविहिसि सरवरं रायहंस, किं चोज्जं।
माणससरसारिक्खं पुहविं भमंतो न पाविहिसि।।

22. सव्वायरेण रक्खह तं पुरिसं जत्थ जयसिरी वसइ।
अत्थमिय चंदबिंबे ताराहि न कीरए जोण्हा।।

23. जइ चंदो किं बहुतारएहि बहुएहि किं च तेण विणा।
जस्स पयासो लोए धवलेइ महामहीवट्ठं।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

16. हे धवल ! (तुम) हंस हो, महासागर के आभूषण हो, (तुम) विशुद्ध हो, तो हे हंस! (तुम) दुष्ट कौओं के मध्य में कैसे फँसे हुए हो ? तुम्हारा (यह) क्या (हुआ)?

17. यदि हंस मसाण के मध्य में (रहता है) (और) कौआ कमल-समूह में रहता है, तो भी निश्चय ही हंस, हंस है (और) बेचारा कौआ, कौआ ही (है)।

18. (यद्यपि) (हंस और बतख) दोनों ही पंख सहित (हैं), उसी तरह दोनों ही धवल (हैं), (तथा) दोनों ही तालाब में निवास (करने वाले हैं), तो भी निश्चय ही हंस और बतख का महान भेद समझा (माना) जाता है।

19. (तालाब के) किनारे पर स्थित एक ही हंस के द्वारा जो शोभा होती है, उसे बहुत पक्षी-समूहों द्वारा भी तालाब प्राप्त नहीं करता है।

20. जैसे मानसरोवर के बिना राजहंसों के लिए सुख नहीं होता, वैसे ही उसके तट प्रदेश भी उनके बिना नहीं शोभते हैं।

21. हे राजहंस ! (यदि) तुम जाओगे, (तो) (निःसन्देह) उत्तम तालाब पाओगे, (इसमें) क्या आश्चर्य है ? (किन्तु) पृथ्वी पर भ्रमण करते हुए (तुम कोई तालाब) मानसरोवर के समान नहीं पाओगे।

22. उस पुरुष की, जहाँ जय-लक्ष्मी रहती है, पूर्ण आदर से रक्षा करो। चन्द्र-बिंब के अस्त होने पर तारों द्वारा प्रकाश नहीं किया जाता है।

23. लोक में जिसका प्रकाश विस्तृत भूमितल को सफेद करता है (चमकता है), यदि (वह) चन्द्रमा (है), (तो) असंख्य तारों से (भी) क्या (लाभ) ? और उसके बिना (भी) असंख्य (तारों से) क्या (लाभ) ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

24. चंदस्स खओ न हु तारयाण रिद्धी वि तस्स न हु ताण।
गरुयाण चडणपडणं इयरा उण निच्चपडिया य॥

25. न हु कस्स वि देंति धणं अन्नं देंतं पि तह निवारंति।
अत्था किं किविणत्था सत्थावत्था सुयंति व्व॥

26. निहणंति धणं धरणीयलम्मि इय जाणिऊण किविणजणा।
पायाले गंतव्वं ता गच्छउ अग्गठाणं पि॥

27. करिणो हरिणहरवियारियस्स दीसंति मोत्तिया कुंभे।
किविणाण नवरि मरणे पयड च्चिय हुंति भंडारा॥

28. देमि न कस्स वि जंपइ उद्दारजणस्स विविहरयणाइं।
चाएण विणा वि नरो पुणो वि लच्छीइ पम्मुक्को॥

29. जीयं जलबिंदुसमं उप्पज्जइ जोव्वणं सह जराए।
दियहा दियहेहि समा न हुंति किं निट्ठुरो लोओ॥

30. विहडंति सुया विहडंति बंधवा विहडेइ संचिओ अत्थो।
एक्कं नवरि न विहडइ नरस्स पुव्वक्कयं कम्मं॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

24. चन्द्रमा का क्षय (होता है), किन्तु तारों का नहीं। वृद्धि भी उसकी (होती है), किन्तु उनकी नहीं। (सत्य यह है कि) महान (व्यक्तियों) का (ही) चढ़ना (और) गिरना (होता है), परन्तु दूसरे अर्थात् सामान्य (व्यक्ति) हमेशा गिरे हुए (ही) हैं।

25. (कृपण) किसी के लिए भी धन नहीं देते हैं। तथा (धन) देते हुए दूसरे (व्यक्ति) को भी (वे) रोकते हैं। क्या (हम कहें कि) कृपण-स्थित (कृपणों के द्वारा संचित किए हुए) रुपये-पैसे अपने आप में स्थित (व्यक्ति की) दशा की तरह सोते हैं (निष्क्रिय होते हैं)।

26. कृपण लोग भूमितल में धन को गाड़ते हैं। इस तरह सोचकर (कि) (उनके द्वारा) पाताल में पहुँचे जाने की सम्भावना है। इस कारण से (धन) भी आगे स्थान को (पाताल में) जाना चाहिए।

27. सिंह के नखों द्वारा चीरे हुए हाथी के गण्डस्थल पर (तो) मोती देखे जाते हैं, (किन्तु) कृपणों के भण्डार केवल मरने पर ही प्रकट होते हैं।

28. (यद्यपि) (कृपण) (कभी) नहीं कहता है, "(मैं) किसी भी श्रेष्ठजन के लिए विविध रत्नों को देता हूँ", फिर भी (ठीक ही है) (लक्ष्मी के) त्याग के बिना ही मनुष्य लक्ष्मी के द्वारा परित्यक्त (होता है)।

29. जीवन जल-बिन्दु के समान (क्षणभंगुर) (है)। यौवन बुढ़ापे के साथ उत्पन्न होता है। दिवस दिवसों के समान नहीं होते हैं। (फिर भी) मनुष्य निष्ठुर क्यों है?

30. पुत्र अलग हो जाते हैं, बन्धु (भी) अलग हो जाते हैं, संचित अर्थ (भी) अलग हो जाता है, (किन्तु) मनुष्य का केवल एक पूर्व में किया हुआ कर्म अलग नहीं होता।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

31. रायंगणम्मि परिसंठियस्स जह कुंजरस्स माहप्पं।
विंझसिहरम्मि न तहा ठाणेसु गुणा विसट्टंति।।

32. ठाणं न मुयइ धीरो ठक्कुरसंघस्स दुट्ठवग्गस्स।
ठंतं पि देइ जुज्झं ठाणे ठाणे जसं लहइ।।

33. जइ नत्थि गुणा ता किं कुलेण गुणिणो कुलेण न हु कज्जं।
कुलमकलंकं गुणवज्जियाण गरुयं चिय कलंकं।।

34. गुणहीणा जे पुरिसा कुलेण गव्वं वहंति ते मूढा।
वंसुप्पन्नो वि धणू गुणरहिए नत्थि टंकारो।।

35. जम्मंतरं न गरुयं गरुयं पुरिसस्स गुणगणारुहणं।
मुत्ताहलं हि गरुयं न हु गरुयं सिप्पिसंपुडयं।।

36. खरफरुसं सिप्पिउडं रयणं तं होइ जं अणग्घेयं।
जाईइ किं व किज्जइ गुणेहि दोसा फुसिज्जंति।।

37. जं जाणइ भणइ जणो गुणाण विहवाण अंतरं गरुयं।
लब्भइ गुणेहि विहवो विहवेहि गुणा न घेप्पंति।।

38. पासपरिसंठिओ वि हु गुणहीणे किं करेइ गुणवंतो।
जायंधयस्स दीवो हत्थकओ निप्फलो च्चेय।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

31. जिस तरह राजा के आँगन में स्थित हाथी की महिमा (होती है), (किन्तु) विंध्य पर्वत के शिखर पर (स्थित हाथी की महिमा) नहीं (होती है), उसी तरह (उचित) स्थानों पर गुण खिलते हैं।

32. धीर पुरुष मुखियाओं के समूह का (तथा) दुष्ट समूह का (विरोध होते हुए भी) स्थान (पद) को नहीं छोड़ता है, किन्तु (वह) स्थिर रहता हुआ विरोध करता है। (इसके फलस्वरूप वह) स्थान-स्थान पर यश को प्राप्त करता है।

33. यदि गुण नहीं है तो उच्च कुल से क्या (लाभ) ? गुणी के लिए उच्च कुल से (कोई) भी प्रयोजन नहीं है। गुणहीन के कारण कलंक-रहित कुल पर निश्चय ही बड़ा कलंक (लगता है)।

34. जो पुरुष गुण-हीन हैं, वे मूढ़ कुल के कारण गर्व धारण करते हैं। (ठीक ही है) यद्यपि धनुष बाँस से उत्पन्न (है), (तो भी) रस्सी-रहित होने के कारण (उसमें) टंकार (सम्भव) नहीं (होती है)।

35. जन्म-संयोग महान नहीं (होता है), पुरुष के द्वारा गुण-समूह का ग्रहण महान (होता है)। मोती ही श्रेष्ठ (होता है), किन्तु सीप का खोल श्रेष्ठ नही (होता है)।

36. सीप का खोल रूखा और कठोर (होता है), (फिर भी उसमें) जो रत्न (उत्पन्न) होता है, वह बहुमूल्य (होता है), बतलाइए तो, जन्म से क्या किया जाता है ? दोष (तो) गुणों से पोंछ दिए जाते हैं।

37. मनुष्य जिस (बात) को (सत्य) समझता है, (उसको) कहता है (कि) गुणों (और) वैभवों का बड़ा अन्तर है। (मनुष्य द्वारा) गुणों से वैभव प्राप्त किया जाता है, (किन्तु) (उसके द्वारा) वैभवों से गुण प्राप्त नहीं किये जाते हैं।

38. पास में स्थित गुणवान भी गुणहीन में क्या करेगा ? जन्मे हुए (जन्म से) अन्धे के लिए हाथ में पकड़ा हुआ दीपक निष्फल ही (होता है)।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

39. परलोयगयाणं पि हु पच्छत्ताओ न ताण पुरिसाणं।
जाण गुणुच्छाहेणं जियंति वंसे समुप्पन्ना।।

40. सज्जणसलाहणिज्जे पयम्मि अप्पा न ठाविओ जेहिं।
सुसमत्था जे न परोवयारिणो तेहि वि न किं पि।।

41. सुसिएण निहसिएण वि तह कह वि हु चंदणेण महमहियं।
सरसा वि कुसुममाला जह जाया परिमलविलक्खा।।

42. एक्को चिय दोसो तारिसस्स चंदणदुमस्स विहिघडिओ।
जीसे दुट्ठभुयंगा खणं पि पासं न मेल्लंति।।

43. बहुतरुवराण मज्झे चंदणविडवो भुयंगदोसेण।
छिज्झइ निरावराहो साहु व्व असाहुसंगेण।।

44. रयणायरेण रयणं परिमुक्कं जइ वि अमुणियगुणेण।
तह वि हु मरगयखंडं जत्थ गयं तत्थ वि महग्घं।।

45. मा दोसं चिय गेण्हह विरले वि गुणे पसंसह जणस्स।
अक्खपउरो वि उवही भण्णइ रयणायरो लोए।।

46. लच्छीइ विणा रयणायरस्स गंभीरिमा तह च्चेव।
सा लच्छी तेण विणा भण कस्स न मंदिरं पत्ता।।

47. वडवाणलेण गहिओ महिओ य सुरासुरेहि सयलेहिं।
लच्छीइ उवहि मुक्को पेच्छह गंभीरिमा तस्स।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

39. परलोक में भी गए हुए उन पुरुषों के (मन में) जिनके गुणों के उत्साह से वंश में उत्पन्न (व्यक्ति) जीते हैं, निश्चय ही पश्चाताप नहीं है।

40. सज्जनों के द्वारा प्रशंसा किए जाने योग्य मार्ग पर आत्मा जिनके द्वारा स्थापित नहीं की गई (है) (तथा) सुसमर्थ (होते हुए) भी जो दूसरों का उपकार करने वाले नहीं है, उन (दोनों) के द्वारा कुछ भी (लाभ) नहीं है।

41. सूखे हुए तथा घिसे गए चन्दन के द्वारा भी निश्चय ही किसी न किसी प्रकार गन्ध फैली हुई है, जिससे कि अस्तित्व में आई हुई (बनी हुई) सरस फूलों की माला भी सुगन्ध से लज्जित (होती है)।

42. विधि के द्वारा घड़े हुए उस जैसे चन्दन के वृक्ष का एक ही दोष है (कि) दुष्ट सर्प क्षण के लिए भी जिसके (उसके) आस-पास को नहीं छोड़ते हैं।

43. बहुत बड़े वृक्षों के बीच में चन्दन की शाखा सर्प दोष के कारण काट दी जाती है, जैसे अपराधरहित भद्र पुरुष दुष्टसंग के कारण (कष्ट दिया जाता है)।

44. समुद्र के द्वारा नहीं जाने हुए गुणों के कारण (समुद्र के द्वारा) रत्न यद्यपि परित्याग किया गया है, तो भी पन्ने का टुकड़ा जहाँ भी गया वहाँ ही मूल्यवान (सिद्ध हुआ है)।

45. (किसी भी) मनुष्य के दोष को ही ग्रहण मत करो, (उसके) विरल गुणों की भी प्रशंसा करो। बहुत अधिक रुद्राक्ष (युक्त) समुद्र भी लोक में रत्नाकर कहा जाता है।

46. लक्ष्मी के बिना (भी) रत्नाकर की गम्भीरता उसी तरह ही (बनी हुई है), (किन्तु) कहो, वह लक्ष्मी उसके (समुद्र के) बिना किसके घर नहीं पहुँची ?

47. (यद्यपि) समुद्र वडवानल (भीतरी आग) के द्वारा ग्रसा हुआ (है), सकल सुर-असुरों द्वारा मथा गया (है) और लक्ष्मी के द्वारा त्यागा गया (है), (फिर भी) उसकी गम्भीरता को देखो।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

48. रयणेहि निरंतरपूरिएहि रयणायरस्स न हु गव्वो।
करिणो मुत्ताहलसंसए वि मयविब्भला दिट्ठी।।

49. रयणायरस्स न हु होइ तुच्छिमा निग्गएहि रयणेहिं।
तह वि हु चंदसरिच्छा विरला रयणायरे रयणा।।

50. जइ वि हु कालवसेणं ससी समुद्दाउ कह वि विच्छुडिओ।
तह वि हु तस्स पयासो आणंदं कुणइ दूरे वि।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रत्नों से निरन्तर भरे हुए भी रत्नाकर के गर्व नहीं है, (किन्तु) मोती के संशय में भी हाथी की मद में तल्लीन दृष्टि (होती है)।

बाहर निकले हुए रत्नों के कारण भी समुद्र के तुच्छता नहीं होती है, किन्तु फिर भी (यह कहा जा सकता है कि) समुद्र में थोड़े (ही) रत्न चन्द्रमा के समान (होते हैं) (जो समुद्र के लिए आनन्द करते हैं)।

यद्यपि विधि के वश से ही चन्द्रमा किसी तरह समुद्र से बिछुड़ा हुआ है, तो भी उसका प्रकाश दूर होने पर भी (समुद्र के लिए) आनन्द करता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ - 2

गउडवहो

1. इह ते जअंति कइणो जअमिणमो जाण सअल-परिणामं।
वाआसु ठिअं दीसइ आमोअ-घणं व तुच्छं व॥

2. णिअआएँच्चिअ वाआएँ अत्तणो गारवं णिवेसंता।
जे एंति पसंसच्चिअ जअंति इह ते महा-कइणो॥

3. दोग्गच्चम्मि वि सोक्खाइँ ताण विहवे वि होंति दुक्खाइं।
कव्व-परमत्थ-रसिआइँ जाण जाअंति हिअआइँ॥

4. सोहेइ सुहावेइ अ उवहुज्जंतो लवो वि लच्छीए।
देवी सरस्सई उण असमग्गा किं पि विणडेइ॥

5. लग्गिहिइ ण वा सुअणे वयणिज्जं दुज्जणेहिं भण्णंतं।
ताण पुण तं सुअणाववाअ-दोसेण संघडइ॥

6. जाण असमेहिं विहिआ जाअइ णिंदा समा सलाहा वि।
णिंदा वि तेहिं विहिआ ण ताण मण्णे किलामेइ॥

7. हरइ अणू वि पर-गुणो गरुअम्मि वि णिअ-गुणे ण संतोसो।
सीलस्स विवेअस्स अ सारमिणं एत्तिअं चेअ॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ - 2
गउडवहो

1. इस लोक में वे कवि जीतते हैं (सफल होते हैं) जिनकी वाणियों (काव्यों) में सकल अभिव्यक्ति विद्यमान (है)। (और इसलिए) वह जगत या तो हर्ष से पूर्ण या तिरस्कार (योग्य) देखा जाता है।

2. स्वकीय वाणी के द्वारा ही निज के गौरव को स्थापित करते हुए जो निश्चय ही प्रशंसा प्राप्त करते हैं, वे महाकवि इस लोक में जीतते हैं (सफल होते हैं)।

3. जिनके हृदय काव्य-तत्त्व के रसिक होते हैं, उन (व्यक्तियों) के लिए निर्धनता में भी (कई प्रकार के) सुख (होते हैं) (तथा) वैभव में भी (कई प्रकार के) दुःख होते हैं।

4. लक्ष्मी की थोड़ी मात्रा भी उपभोग की जाती हुई शोभती है तथा सुखी करती है, किन्तु किंचित् भी अपूर्ण देवी सरस्वती (अधूरी विद्या) उपहास करती है।

5. दुर्जनों द्वारा कही हुई, निन्दा सज्जनों को लगेगी अथवा नहीं (लगेगी) (कहा नहीं जा सकता), किन्तु वह (निन्दा) सज्जनों की निन्दा (से उत्पन्न) दोष के कारण उन (दुर्जनों) के (ही) घटित हो जाती है।

6. जिनके लिए असमान (व्यक्तियों) के द्वारा की गई प्रशंसा भी निन्दा के समान होती है, उनके मन को उन (असमान व्यक्तियों) के द्वारा की गई निन्दा भी खिन्न नहीं करती है।

7. दूसरे का छोटा गुण भी (महान व्यक्ति को) प्रसन्न करता है, (किन्तु) (उसे) अपने बड़े गुण में भी सन्तोष नहीं (होता है)। शील और विवेक का यह इतना ही सार है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

8. णिव्वाडंताण सिवं सअलं चिअ सिवअरं तहा ताण।
णिव्वडइ किं पि जह ते वि अप्पणा विम्हअमुवेंति।।

9. तं खलु सिरीएँ रहस्सं जं सुचरिअ-मग्गणेक्क-हिअओ वि।
अप्पाणमोसरंतं गुणेहिं लोओ ण लक्खेइ।।

10. एक्के लहुअ-सहावा गुणेहि लहिउं महंति धण-रिद्धिं।
अण्णे विसुद्ध-चरिआ विहवाहि गुणे विमग्गंति।।

11. दूमिज्जंता हिअएण किं पि चिंतेंति जइ ण जाणामि।
किरियासु पुण पअट्टंति सज्जणा णावरद्धे वि।।

12. महिमं दोसाण गुणा दोसा वि हु देंति गुण-णिहाअस्स।
दोसाण जे गुणा ते गुणाण जइ ता णमो ताण।।

13. संसेविऊण दोसे अप्पा तीरइ गुण-ट्ठिओ काउं।
णिव्वडिअ-गुणाण पुणो दोसेसु मई ण संठाइ।।

14. जह जह णग्घंति गुणा जह जह दोसा अ संपइ फलंति।
अगुणाअरेण तह तह गुण-सुण्णं होहिइ जंअं पि।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

8. (स्व-पर के) कल्याण को सिद्ध करते हुए (मनुष्यों) के लिए समग्र (लोक) ही अधिक कल्याणकारी (हो जाता है)। उनके लिए कुछ इस प्रकार सिद्ध होता है, जिससे वे स्वयं भी आश्चर्य को प्राप्त करते हैं।

9. वास्तव में लक्ष्मी की (प्राप्ति का) वह (यह) रहस्य (है) कि (धनी) मनुष्य सुचरित्र (व्यक्तियों) की खोज में स्थिर हृदय (होता है), यद्यपि वह गुणों से निज को फिसलते हुए नहीं देखता है।

10. कुछ (व्यक्ति) (जिनके) स्वभाव तुच्छ (हैं) गुणों के द्वारा धन-वैभव को प्राप्त करने की इच्छा करते हैं, दूसरे (व्यक्ति) (जिनके) चरित्र विशुद्ध (हैं) वैभव के द्वारा गुणों को चाहते हैं।

11. यदि पीड़ा दिये जाते हुए सज्जन हृदय में कुछ विचारते हैं (तो) (मैं) (यह) नहीं जानता हूँ; किन्तु (इतना निश्चित है कि) (वे) (अपने प्रति) अपराध में (अपराधी के प्रति) भी सावद्य क्रियाओं में प्रवृत्ति नहीं करते हैं।

12. (यह ठीक है कि) गुण, दोषों के लिए तथा दोष भी गुण-समूह के लिए महिमा प्रदान करते हैं, (किन्तु) दोषों के जो गुण (हैं), वे यदि गुणों के (हों) तो उन (गुणों) के लिए नमस्कार। (जैसे दोषों के द्वारा सांसारिक जीवन में सफलता मिल जाती है, वह यदि गुणों से मिल जाय तो गुणों को नमस्कार)।

13. दोषों को खूब भोग करके (भी) आत्मा गुणों को (अपने में) अवस्थित करने के लिए समर्थ होती है, किन्तु गुणों के सिद्ध होने पर (तो) दोषों में (बिल्कुल ही) मति नहीं रहती है।

14. जैसे-जैसे इस समय गुण शोभायमान नहीं होंगे, (तथा) जैसे-जैसे (इस समय) दोष फलेंगे, वैसे-वैसे जगत भी अगुणों के आदर से गुण-शून्य हो जायेगा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

15. अच्चंत-विएएण वि गरुआण ण णिव्वडंति संकप्पा।
विज्जुज्जोओ बहलत्तणेण मोहेइ अच्छीइं।।

16. उवअरणीभूअ-जआ ण हु णवर ण पाविआ पहु-ट्ठाणं।
उवअरणं पि ण जाआ गुण - गुरुणो काल - दोसेण।।

17. विसइच्चेअ सरहसं जेसुं किं तेहिं खंडिआसेहिं।
णिक्खमइ जेसु परिओस - णिब्भरो ताइँ गेहाइं।।

18. साहीण - सज्जणा वि हु णीअ - पसंगे रमंति काउरिसा।
सा इर लीला जं काअ - धारणं सुलह - रअणाण।।

19. किविणाण अण्ण - विसए दाण - गुणे अहिसलाहमाणाण।
णिअ - चाए उच्छाहो ण णाम कह वा ण लज्जा वि।।

20. सइ जाढर - चिंताअड्ढिअं व हिअअं अहो मुहं जाण।
उद्धुर - चित्ता कह णाम होंतु ते सुण्ण - ववसाया।।

21. अघडिअ - परावलंबा जह जह गरुअत्तणेण विहडंति।
तह तह गरुआण हवंति बद्ध-मूलाओ कित्तीओ।।

22. तण्हा अखंडिअच्चिअ विहवे अच्चुण्णए वि लहिऊण।
सेलं पि समारुहिऊण किं व गअणस्स आरूढं।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

15. अत्यन्त ओजस्वी होने के. कारण ही महान (व्यक्तियों) के संकल्प सम्पन्न नहीं होते हैं। (ठीक ही है) पुष्कलता के कारण बिजली का प्रकाश आँखों को अस्त-व्यस्त कर देता है।

16. (यद्यपि) गुणों में महान (व्यक्ति तो) मानव जाति के अन्दर उपकार करने वाले हुए (हैं) (फिर भी) आश्चर्य ! (वे) न केवल उच्च स्थान को नहीं पहुँचे (हैं) (पर) काल-दोष से (उन्होंने) (जीविका का) साधन भी नहीं पाया है।

17. (मनुष्य) जिन (घरों) में उत्सुकता से प्रवेश करता है, (किन्तु) छिन्न-आशाओं से ही बाहर निकलता है, उन (घरों) से क्या (लाभ) ? जिन (घरों) में पूर्ण सन्तोष (होता है) वे (ही) (वास्तव में) घर (हैं)।

18. आश्चर्य ! दुष्ट पुरुष नीच-संगति में ही प्रसन्न होते हैं, (यद्यपि) सज्जन (उनके) निकट (होते हैं)। वह निश्चय ही (उनकी) स्वेच्छाचारिता (है) कि रत्नों के सुलभ होने पर (भी) (उनके द्वारा) काँच ग्रहण (किया जाता है)।

19. दूसरों के विषय में दान-गुण को सराहते हुए (भी) कृपण के निजत्याग में उत्साह नहीं है, और आश्चर्य (उसके) लज्जा भी कैसे नहीं है ?

20. जिनका मुख नीचे है तथा हृदय सदा पेट से सम्बन्ध रखने वाली चिन्ता से खिंचा हुआ है, (उनके लिए) ऊँचे उद्देश्य कैसे सम्भव हों ? (वास्तव में) वे (लोग) (उच्च) प्रयत्न से विहीन (होते हैं)।

21. महापुरुषों के द्वारा दूसरे (व्यक्ति) सहारे नहीं बनाए गए हैं, जैसे-जैसे (वे) (मनुष्यों द्वारा) (किए गए) सम्मान से अलग होते हैं, वैसे-वैसे (उनकी) कीर्ति (गहरी) जड़ पकड़े हुए होती है।

22. आश्चर्य ! (सम्पत्ति की) बहुत ऊँची (स्थितियों) को प्राप्त करके भी सम्पत्ति में तृष्णा नहीं मिटाई गई (है), तो पर्वत पर चढ़कर क्या गगन पर चढ़ना है ?

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ - 3

दशवैकालिक

1. समाए पेहाए परिव्वयंतो,
सिया मणो निस्सरई बहिद्धा।
न सा महं नो वि अहं पि तीसे,
इच्चेव ताओ विणएज्ज रागं॥

2. आयावयाही चय सोगुमल्लं,
कामे कमाही कमियं खु दुक्खं।
छिंदाहि दोसं विणएज्ज रागं,
एवं सुही होहिसि संपराए॥

3. सव्वभूयऽप्पभूयस्स सम्मं भूयाइं पासओ।
पिहियासवस्स दंतस्स पावं कम्मं न बंधई॥

4. पढमं नाणं तओ दया एवं चिट्ठइ सव्वसंजए।
अन्नाणी किं काही ? किं वा नाहिइ छेय पावगं ?॥

5. सोच्चा जाणइ कल्लाणं सोच्चा जाणइ पावगं।
उभयं पि जाणई सोच्चा जं छेयं तं समायरे॥

6. तत्थिमं पढमं ठाणं महावीरेण देसियं।
अहिंसा निउणा दिट्ठा सव्वभूएसु संजमो॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ - 3
दशवैकालिक

1. (ऐसा होता है कि) राग-द्वेष से रहित चिन्तन में भ्रमण करता हुआ मन कभी (सम अवस्था से) बाहर (विषमता में) निकल जाता है। (उस समय व्यक्ति यह विचारे कि) वह (विषमता) मेरी नहीं (है), निश्चय ही मैं भी उसका नहीं (हूँ)। इस प्रकार उस (विषमता) से (वह) आसक्ति को हटावे।

2. (तू) (अपने को) तपा; अति-कोमलता को छोड़; इच्छाओं को वश में कर; (इससे) निश्चय ही दुःख पार किए गए (हैं)। (तू) द्वेष को नष्ट कर; राग को हटा; इस प्रकार (तू) संसार में सुखी होगा।

3. सब प्राणियों का (सुख-दुःख) अपने समान (होने) के कारण (जो व्यक्ति) (उन) प्राणियों में (स्व-तुल्य आत्मा का) अच्छी तरह से दर्शन करनेवाला (होता है), (वह) रोके हुए आश्रव के कारण (तथा) आत्म-नियन्त्रित होने के कारण अशुभ कर्म को नहीं बाँधता है।

4. सर्वप्रथम (प्राणियों की आत्मा-तुल्यता का) ज्ञान (करो); बाद में (ही) (उनके प्रति) करुणा (होती है)। इस प्रकार प्रत्येक (ही) संयत (मनुष्य) आचरण करता है। (प्राणियों की आत्म-तुल्यता के विषय में) अज्ञानी (व्यक्ति) क्या करेगा ? (वह) हित (और) अहित को कैसे जानेगा ?

5. (मनुष्य) मंगलप्रद को सुनकर समझता है; (वह) अनिष्टकर को (भी) सुनकर (ही) समझता है; (वह) दोनों (मंगलप्रद और अनिष्टकर) को भी सुनकर (ही) समझता है। (इसलिए) (इन दोनों में से) जो मंगलप्रद (है), (वह) उसका आचरण करे।

6. वहाँ पर (व्रतों आदि में) (अहिंसा का) यह सर्वप्रथम स्थान महावीर के द्वारा उपदिष्ट (है)। (महावीर के द्वारा) अहिंसा सूक्ष्म रूप से जानी गई है। (उसका सार है) – सब प्राणियों के प्रति करुणाभाव।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

7. न बाहिरं परिभवे अत्ताणं न समुक्कसे।
सुयलाभे न मज्जेज्जा जच्चा तवसि बुद्धिए॥

8. एवं-धम्मस्स विणओ मूलं, परमो से मोक्खो।
जेण कित्तिं सुयं सग्घं निस्सेसं चाभिगच्छई॥

9. तहेव अविणीयप्पा उववज्झा हया गया।
दीसंति दुहमेहंता आभिओगमुवट्ठिया॥

10. तहेव सुविणीयप्पा उववज्झा हया गया।
दीसंति सुहमेहंता इड्ढिं पत्ता महायसा॥

11. तहेव सुविणीयप्पा लोगंसि नर-नारिओ।
दीसंति सुहमेहंता इड्ढिं पत्ता महायसा॥

12. अप्पणट्ठा परट्ठा वा कोहा वा जइ वा भया।
हिंसगं न मुसं बूया नो वि अन्नं वयावए॥

13. अप्पत्तियं जेण सिया, आसु कुप्पेज्ज वा परो।
सव्वसो तं न भासेज्जा भासं अहियगामिणिं॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

7. (व्यक्ति) बाह्य (दूसरे) का तिरस्कार नहीं करे, अपने को ऊँचा नहीं दिखाए, ज्ञान का लाभ होने पर गर्व नहीं करे, (तथा) जाति का, तपस्वी (होने) का (और) बुद्धि का (गर्व न करे)।

8. इसी प्रकार धर्म का मूल विनय (है), उसका अन्तिम (परिणाम) परम-शान्ति (है)। जिससे (विनय से) (व्यक्ति) कीर्ति, प्रशंसनीय ज्ञान और समस्त (गुण) प्राप्त करता है।

9. (जिस प्रकार) राजकीय वाहन के रूप में काम आनेवाले (उद्दण्ड) हाथी (और) घोड़े दुःख में बढ़ते हुए देखे जाते हैं, उसी प्रकार (किसी भी प्रकार के) प्रयास में लगे हुए अविनीत मनुष्य (भी) (दुःख में बढ़ते हुए देखे जाते हैं)।

10. (जिस प्रकार) राजकीय वाहन के रूप में काम आनेवाले (सुशील) हाथी (और) घोड़े सुख में बढ़ते हुए देखे जाते हैं, उसी प्रकार विनीत मनुष्यों ने महान यश के कारण वैभव प्राप्त किया।

11. (जिस प्रकार) लोक में (सुशील) नर-नारियाँ सुख में बढ़ती हुई देखी जाती हैं, उसी प्रकार विनीत मनुष्यों ने महान यश के कारण वैभव प्राप्त किया।

12. (मनुष्य) निज के लिए या दूसरे के लिए क्रोध से या भले ही भय से पीड़ा-कारक (वचन) (और) असत्य (वचन) (स्वयं) न बोले, न ही दूसरे से बुलवाए।

13. जिससे मानसिक पीड़ा हो और दूसरा शीघ्र क्रोध करने लगे, उस अहित करनेवाली भाषा को (व्यक्ति) बिल्कुल न बोले।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

14. सज्झाय-सज्झाणरयस्स ताइणो
अपावभावस्स तवे रयस्स।
विसुज्झई जं से मलं पुरेकडं
समीरियं रुप्पमलं व जोइणा॥

15. विणयं पि जो उवाएण चोइओ कुप्पई नरो।
दिव्वं सो सिरिमेज्जंतिं दंडेण पडिसेहए॥

16. दुग्गओ वा पओएणं चोइओ वहई रहं।
एवं दुब्बुद्धि किच्चाणं वुत्तो वुत्तो पकुव्वई॥

17. मुहुत्तदुक्खा हु हवंति कंटया
अओमया, ते वि तओ सुउद्धरा।
वायादुरुत्ताणि दुरुद्धराणि
वेराणुबंधीणि महब्भयाणि॥

18. गुणेहिं साहू, अगुणेहऽसाहू
गेण्हाहि साहूगुण, मुंचऽसाहू।
वियाणिया अप्पगमप्पएणं
जो राग-दोसेहिं समो, स पुज्जो॥

19. विविहगुणतवोरए य निच्चं
भवइ निरासए निज्जरट्ठिए।
तवसा धुणइ पुराणपावगं
जुत्तो सया तवसमाहिए॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्वाध्याय और सद्-ध्यान में लीन (व्यक्ति) का, उपकारी का, निष्पाप मन (वाले) का, ताप में लीन (व्यक्ति) का– (इन सबका) पूर्व में किया हुआ जो (भी) दोष (है), (वह) शुद्ध हो जाता है, जैसे कि अग्नि के द्वारा झकझोरे हुए सोने का मैल (शुद्ध हो जाता है)।

विनय में युक्ति के द्वारा भी प्रेरित जो मनुष्य क्रोध करता है, वह आती हुई दिव्य संपत्ति को डण्डे से रोक देता है।

जैसे अंकुश के द्वारा प्रेरित दुष्ट हाथी रथ को आगे चलाता है, इसी प्रकार दुर्बुद्धि (शिष्य) कर्त्तव्यों को कहा हुआ, कहा हुआ (ही) करता है।

लोहे से बने हुए काँटे (शरीर में लगने पर) थोड़ी देर के लिए ही दुःखमय होते हैं तथा वे बाद में (शरीर से) आसानी से निकाले जा सकने वाले (होते हैं), (किन्तु) वाणी के द्वारा (बोले गए) दुर्वचन (जो काँटों के तुल्य होते हैं) कठिनाई से निकाले जा सकने वाले (कठिनाई से भुलाए जा सकने वाले) (होते हैं), (वे) वैर को बाँधनेवाले (तथा) महा भय पैदा करने वाले (होते हैं)।

(व्यक्ति) सुगुणों के कारण साधु (होता है), (और) दुर्गुणसमूह के कारण ही असाधु। (अतः) (तुम) साधु (बनने) के लिए सुगुणों को ग्रहण करो (और) (उन दुर्गुणों को) छोड़ो (जिनके कारण) (व्यक्ति) असाधु (होता है)। (समझो) जो (व्यक्ति) आत्मा को आत्मा के द्वारा जानकर राग-द्वेष में समान (होता है), वह पूज्य (है)।

(जो) कर्म-क्षय का इच्छुक (व्यक्ति) (है), (वह) सदा अनेक प्रकार के शुभ परिणामों को (उत्पन्न करने वाले) तप में लीन (रहता है) तथा (वह) (संसारी फल की) आशा से शून्य होता है। (इस तरह से) (जो) तप-साधना में सदा संलग्न (रहता है), (वह) तप के द्वारा पुराने पापों को नष्ट कर देता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

20. जया य चयई धम्मं अणज्जो भोगकारणा।
से तत्थ मुच्छिए बाले आयइं नावबुज्झई।।

21. जत्थेव पासे कइ दुप्पउत्तं
काएण वाया अदु माणसेणं।
तत्थेव धीरो पडिसाहरेज्जा
आइण्णो खिप्पमिव क्खलीणं।।

22. अप्पा खलु सययं रक्खियव्वो
सव्विंदिएहिं सुसमाहिएहिं।
अरक्खिओ जाइपहं उवेई
सुरक्खिओ सव्वदुहाण मुच्चइ।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जब अज्ञानी (व्यक्ति) भोग के प्रयोजन से धर्म (अध्यात्मिक मूल्यों) को सर्वथा छोड़ देता है, (तो) (यह कहना ठीक है कि) वह अज्ञानी उस (भोग) में मूर्च्छित (है)। (इस तरह से) (वह) (अपने) भविष्य को नहीं समझता है।

जहाँ कहीं धीर (व्यक्ति) मन से, वचन से या काया से खराब (कार्य) किया हुआ (अपने में) देखे, वहाँ ही (वह) (अपने को) पीछे खींचे, जैसे कुलीन घोड़ा लगाम को (देखकर) (अपने को) तुरन्त (पीछे खींच लेता है)।

निस्सन्देह आत्मा पूरी तरह से उपशमित सभी इन्द्रियों द्वारा सदा सुरक्षित की जानी चाहिए। अरक्षित (आत्मा) जन्ममार्ग की ओर जाती है। सुरक्षित (आत्मा) सब दुःखों से छुटकारा पाती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ - 4

आचारांग

1. अहासुतं वदिस्सामि जहा से समणे भगवं उट्ठाय।
संखाए तंसि हेमंते अहुणा पव्वइए रीइत्था॥

2. अदु पोरिसिं तिरियभित्तिं चक्खुमासज्ज अंतसो झाति।
अह चक्खुभीतसहिया ते हंता हंता बहवे कंदिंसु॥

3. जे केयिमे अगारत्था मीसीभावं पहाय से झाति।
पुट्ठो वि णाभिभासिंसु गच्छति णाइवत्तती अंजू॥

4. फरिसाइं दुत्तितिक्खाइं अतिअच्च मुणी परक्कममाणे।
आघात-णट्ट-गीताइं दंडजुद्धाइं मुट्ठिजुद्धाइं॥

5. गढिए मिहुकहासु समयम्मि णातसुते विसोगे अदक्खु।
एताइं से उरालाइं गच्छति णायपुत्ते असरणाए॥

6. पुढविं च आउकायं च तेउकायं च वायुकायं च।
पणगाइं बीयहरियाइं तसकायं च सव्वसो णच्चा॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ - 4
आचारांग

जैसा कि सुना है (मैं) कहूँगा। (आत्मस्वरूप को) जानकर श्रमण भगवान उस हेमन्त (ऋतु) में (सांसारिक परतन्त्रता को) त्यागकर दीक्षित हुए (और) वे इस समय (ही) विहार कर गए।

अब (महावीर) तिरछी भीत पर प्रहर (तीन घण्टे की अवधि) तक (पलक न झपकाई हुई) आँखों को लगाकर आन्तरिक रूप से ध्यान करते थे। तब (उन असाधारण) आँखों के डर से युक्त वे (बे-समझ लोग) यहाँ आओ ! देखो ! (कहकर) बहुत लोगों को पुकारते थे।

और (यदि) ये (महावीर) किन्हीं घर में रहने वालों के (स्थानों) (पर ठहरते थे), (तो) वे (वहाँ उनसे) मेलजोल के विचार को छोड़कर ध्यान करते थे। (यदि) (उनसे कभी कोई बात) पूछी गई (होती थी) (तो) भी (वे) बोलते नहीं थे, (कोई बाधा उपस्थित होने पर) (वे) (वहाँ से) चले जाते थे, (वे) (सदैव) संयम में तत्पर (होते थे) (और) (वे) (कभी) (ध्यान की) उपेक्षा नहीं करते थे।

दुस्सह कटु वचनों की अवहेलना करके मुनि (महावीर) (आत्म-ध्यान में) (ही) पुरुषार्थ करते हुए (रहते थे)। (वे) कथा-नाच-गान में (तथा) लाठी-युद्ध (और) मूठी-युद्ध में (समय नहीं बिताते थे)।

परस्पर (काम) कथाओं में तथा (कामातुर) इशारों में आसक्त (व्यक्तियों) को ज्ञात-पुत्र (महावीर) (हर्ष)-शोक रहित देखते थे। वे ज्ञात-पुत्र इन मनोहर (बातों) का स्मरण नहीं करते थे।

पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय, शैवाल, बीज और हरी वनस्पति तथा त्रसकाय को पूर्णतया जानकर (महावीर विहार करते थे)।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

7. एताइं संति पडिलेहे चित्तमंताइं से अभिण्णाय।
परिवज्जियाण विहरित्था इति संखाए से महावीरे॥

8. मातण्णे असणपाणस्स णाणुगिद्धे रसेसु अपडिण्णे।
अच्छिं पि णो पमज्जिया णो वि य कंडुयए मुणी गातं॥

9. अप्पं तिरियं पेहाए अप्पं पिट्ठओ उप्पेहाए।
अप्पं बुइए पडिभाणी पथपेही चरे जतमाणे॥

10. आवेसण-सभा-पवासु पणियसालासु एगदा वासो।
अदुवा पलियट्ठाणेसु पलालपुंजेसु एगदा वासो॥

11. आगंतारे आरामागारे नगरे वि एगदा वासो।
सुसाणे सुण्णगारे वा रुक्खमूले वि एगदा वासो॥

12. एतेहिं मुणी सयणेहिं समणे आसि पतेलस वासे।
राइंदिवं पि जयमाणे अप्पमत्ते समाहिते झाती॥

13. णिंद्दं पि णो पगामाए सेवइया भगवं उट्ठाए।
जग्गावतीय अप्पाणं ईसिं साईय अपडिण्णे॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ये चेतनवान हैं, उन्होंने देखा। इस प्रकार वे महावीर जानकर (और) समझकर (प्राणियों की हिंसा का) परित्याग करके विहार करते थे।

मुनि (महावीर) खाने-पीने की मात्रा को समझनेवाले (थे), (भोजन के) रसों में लालायित नहीं (होते) (थे)। (वे) (भोजन-सम्बन्धी) निश्चय नहीं (करते थे)। (आँख में कुछ गिरने पर) (वे) आँख को भी नहीं पोंछकर (रहते थे) अर्थात् नहीं पोंछते थे और (वे) शरीर को भी खुजलाते नहीं (थे)।

मार्ग को देखने वाले (महावीर) तिरछे (दाएँ-बाएँ) देखकर नहीं (चलते थे), पीछे की ओर देखकर नहीं (चलते थे), (किसी के द्वारा) संबोधित किए गए होने पर (वे) उत्तर देने वाले नहीं (होते थे)। (इस तरह से) (वे) सावधानी बरतते हुए गमन करते थे।

(महावीर का) कभी शून्य घरों में, सभा भवनों में, दुकानों में रहना (होता था)। अथवा (उनका) कभी (लुहार, सुनार, कुम्हार आदि के) कर्म-स्थानों में (और) घास-समूह में (छान के नीचे) ठहरना (होता था)।

(महावीर का) कभी मुसाफिरखाने में, (कभी) बगीचे में (बने हुए) स्थान में (तथा) (कभी) नगर में भी रहना (होता था)। तथा (उनका) कभी मसाण में, (कभी) सूने घर में (और) (कभी) पेड़ के नीचे के भाग में भी रहना (होता था)।

इन (उपर्युक्त) स्थानों में मुनि (महावीर) (चल रहे) तेरहवें वर्ष में (साढ़े बारह वर्ष-पन्द्रह दिनों में) समता-युक्त मन वाले रहे। (वे) रात-दिन ही (संयम में) सावधानी बरतते हुए अप्रमाद-युक्त (और) एकाग्र (अवस्था) में ध्यान करते थे।

भगवान (महावीर) आनन्द के लिए कभी भी नींद का उपभोग नहीं करते थे। और (नींद आती तो) ठीक उसी समय अपने को खड़ा करके जगा लेते थे। (वे) (वास्तव में) (नींद की) इच्छारहित (होकर) बिल्कुल-थोड़ा सा सोने-वाले (थे)।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

14. संबुज्झमाणे पुणरवि आसिंसु भगवं उट्ठाए।
णिक्खम्म एगया राओ बहिं चक्कमिया मुहुत्तागं।।

15. सयणेहिं तस्सुवसग्गा भीमा आसी अणेगरूवा य।
संसप्पगा य जे पाणा अदुवा पक्खिणो उवचरंति।।

16. इहलोइयाइं परलोइयाइं भीमाइं अणेगरूवाइं।
अवि सुब्भिदुब्भिगंधाइं सद्दाइं अणेगरूवाइं।।

17. अधियासए सया समिते फासाइं विरूवरूवाइं।
अरतिं रतिं अभिभूय रीयति माहणे अबहुवादी।।

18. लाढेहिं तस्सुवसग्गा बहवे जाणवया लूसिंसु।
अह लूहदेसिए भत्ते कुक्कुरा तत्थ हिंसिंसु णिवतिंसु।।

19. अप्पे जणे णिवारेति लूसणए सुणए डसमाणे।
छुच्छुक्कारेंति आहंतु समणं कुक्कुरा दंसतु त्ति।।
(छुच्छुकरेंति आहंसु समणं कुक्कुरा दसंतु त्ति)[1]।।

20. हतपुव्वो तत्थ डंडेण अदुवा मुट्ठिणा अदु फलेणं।
अदु लेलुणा कवालेणं हंता हंता बहवे कंदिंसु।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

14. कभी-कभी रात में.(जब नींद सताती तो) भगवान (महावीर) (आवास से) बाहर निकलकर कुछ समय तक बाहर इधर-उधर घूमकर फिर सक्रिय होकर पूर्णत: जागते हुए (ध्यान में) बैठ जाते थे।

15. उनके लिए (महावीर के लिए) (उन) स्थानों में नाना प्रकार के भयानक कष्ट भी (वर्तमान) थे। (वहाँ) जो भी चलने-फिरने वाले जीव (थे) और (वहाँ) (जो) (भी) पंखयुक्त (जीवे थे) (वे) (वहाँ) (उन पर) उपद्रव करते थे।

16. (महावीर ने) इस लोक सम्बन्धी और परलोक सम्बन्धी (अलौकिक) नाना प्रकार के भयानक (कष्टों) को (समतापूर्वक सहन किया)। (वे) नाना प्रकार के रुचिकर और अरुचिकर गन्धों में तथा शब्दों में (राग-द्वेष-रहित रहे)।

17. अहिंसक (और) बहुत न बोलनेवाले (महावीर) ने अनेक प्रकार के कष्टों को (शान्ति से) झेला (और) (उनमें) (वे) सदा समतायुक्त (रहे)। (विभिन्न परिस्थितियों में) हर्ष (और) शोक पर विजय प्राप्त करके (वे) गमन करते रहे।

18. लाढ़ देश में रहनेवाले लोगों ने उनके (महावीर के) लिए बहुत कष्ट (पैदा किए) (और) (उनको) हैरान किया। (लाढ़ देश के) निवासी रूखे (थे), उसी तरह (उनके द्वारा) पकाया हुआ भोजन (भी रूखा होता था)। कुत्ते (कूकरे) वहाँ पर (महावीर को) सन्ताप देते थे (और) (उन पर) टूट पड़ते थे।

19. (वहाँ पर) कुछ ही लोग (ऐसे थे) (जो) काटते हुए कुत्तों को (और) हैरान करनेवाले (मनुष्यों) को दूर हटाते थे। (किन्तु बहुत लोग) छु-छु की आवाज करते थे (और) कुत्तों को बुला लेते थे, (फिर उनको) महावीर के (पीछे) (लगा देते थे), जिससे (वे) थक जाएँ (और वहाँ से चले जाएँ)।

20. (कुछ लोगों द्वारा) वहाँ (महावीर पर) लाठी से अथवा मुक्के से अथवा चाकू, तलवार, भाला आदि से अथवा ईंट, पत्थर आदि के टुकड़े से, (अथवा) ठीकरे से पहले प्रहार किया गया (होता था) (बाद में) (वे ही कुछ लोग) आओ ! देखो ! (कहकर) बहुतों को पुकारते थे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

21. सूरो संगाम्मसीसे वा संवुडे तत्थ से महावीरे।
पडिसेवमाणो फरुसाइं अचले भगवं रीयित्था।।

22. अवि साहिए दुवे मासे छप्पि मासे अदुवा अपिवित्था।
राओवरातं अपडिण्णे अण्णगिलायमेगता भुंजे।।

23. छट्ठेण एगया भुंजे अदुवा अट्ठमेण दसमेण।
दुवालसमेण एगदा भुंजे पेहमाणे समाहिं अपडिण्णे।।

24. णच्चाण से महावीरे णो वि य पावगं सयमकासी।
अण्णेहिं वि ण कारित्था कीरंतं पि णाणुजाणित्था।।

25. गामं पविस्स णगरं वा घासमेसे कडं परट्ठाए।
सुविसुद्धमेसिया भगवं आयतजोगताए सेवित्था।।

26. अकसायी विगतगेही य सद्द-रूवेसुऽमुच्छिते झाती।
छउमत्थे वि विप्परक्कममाणे ण पमायं सइं पि कुव्वित्था।।

27. सयमेव अभिसमागम्म आयतजोगमायसोहीए।
अभिणिव्वुडे अमाइल्ले आवकहं भगवं समितासी।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

21. जैसे (कवच से) ढका हुआ योद्धा संग्राम के मोर्चे पर (रहता है), (वैसे ही) वे महावीर वहाँ (लाढ़ देश में) कठोर (यातनाओं) को सहते हुए (आत्म-नियन्त्रित रहे) (और) (वे) भगवान (महावीर) अस्थिरता-रहित (बिना डिगे) विहार करते थे।

22. और दो मास से अधिक अथवा छः मास तक भी (वे) (कुछ) नहीं पीते थे। रात में और दिन में (वे) (सदैव) राग-द्वेष-रहित (समतायुक्त) (रहे)। कभी-कभी (उन्होंने) बासी (तन्द्रालु) भोजन (भी) खाया।

23. कभी (वे) दो दिन के उपवास के बाद में, तीन दिन के उपवास के बाद में, अथवा चार दिन के उपवास के बाद में भोजन करते थे। कभी (वे) पाँच दिन के उपवास के बाद में भोजन करते थे। (वे) समाधि को देखते हुए निष्काम (थे)।

24. वे महावीर (आत्मस्वरूप को) जानकर स्वयं भी बिल्कुल पाप नहीं करते थे (तथा) दूसरों से भी पाप नहीं करवाते थे (और) किए जाते हुए (पाप का) अनुमोदन भी नहीं करते थे।

25. गाँव या नगर में प्रवेश करके भगवान (महावीर) (वहाँ) दूसरे के लिए (गृहस्थ के लिए) बने हुए आहार की (ही) भिक्षा ग्रहण करते थे। (इस तरह) सुविशुद्ध (आहार की) भिक्षा ग्रहण करके (वे) संयत (समतायुक्त) योगत्व से (उसको) उपयोग में लाते थे।

26. (महावीर) कषाय (क्रोध, मान, माया और लोभ)-रहित (थे), (उनके द्वारा) लोलुपता नष्ट कर दी गई (थी), (वे) शब्दों (तथा) रूपों में अनासक्त (थे) और ध्यान करते थे। (जब वे) असर्वज्ञ (थे), (तब) भी (उन्होंने) साहस के साथ (संयम पालन) करते हुए एक बार भी प्रमाद नहीं किया।

27. आत्म-शुद्धि के द्वारा संयत प्रवृत्ति को स्वयं ही प्राप्त करके भगवान शान्त (और) सरल (बने)। (वे) जीवनपर्यन्त समतायुक्त रहे।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ - 5

प्रवचनसार

1. चारित्तं खलु धम्मो धम्मो जो सो समो त्ति णिद्दिट्ठो।
मोहक्खोहविहीणो परिणामो अप्पणो हु समो।।

2. अइसयमादसमुत्थं विसयातीदं अणोवममणंतं।
अव्वुच्छिण्णं च सुहं सुद्धुवओगप्पसिद्धाणं।।

3. सोक्खं वा पुण दुक्खं केवलणाणिस्स णत्थि देहगदं।
जम्हा अदिंदियत्तं जादं तम्हा दु तं णेयं।।

4. णाणं अप्प त्ति मदं वट्टदि णाणं विणा ण अप्पाणं।
तम्हा णाणं अप्पा अप्पा णाणं व अण्णं वा।।

5. ठाणणिसेज्जविहारा धम्मुवदेसो य णियदयो तेसिं।
अरहंताणं काले मायाचारो व्व इत्थीणं।।

6. तिमिरहरा जइ दिट्ठी जणस्स दीवेण णत्थि कायव्वं।
तह सोक्खं सयमादा विसया किं तत्थ कुव्वंति।।

7. सयमेव जहादिच्चो तेजो उण्हो य देवदा णभसि।
सिद्धो वि तहा णाणं सुहं च लोगे तहा देवो।।

8. देवदजदिगुरुपूजासु चेव दाणम्मि वा सुसीलेसु।
उववासादिसु रत्तो सुहोवओगप्पगो अप्पा।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ - 5

प्रवचनसार

1. चारित्र निश्चय ही धर्म (है)। जो समता (है), वह ही धर्म कहा गया है। मूर्च्छा रहित और व्याकुलतारहित आत्मा का भाव ही समता (है)।

2. शुद्धोपयोग (वीतरागभाव) से विभूषित (जीवों) का सुख श्रेष्ठ, आत्मा से उत्पन्न, इन्द्रिय-विषयों से परे, अनुपम, अनन्त और सतत (होता है)।

3. केवलज्ञानी के देह विषयक सुख तथा दु:ख नहीं है। चूँकि (उसके) अतीन्द्रियता उत्पन्न हुई है, इसलिए ही वह (बात) समझने योग्य (है)।

4. (इस प्रकार कहा गया है कि) ज्ञान आत्मा (है)। आत्मा के बिना ज्ञान नहीं रहता है। इसलिए ज्ञान आत्मा (है)। (संक्षेप में) आत्मा ज्ञान (है) तथा (सुखादि) अन्य भी।

5. अरिहन्तों के (उस) समय में उनका खड़ा होना, बैठना, गमन और धर्मोपदेश स्त्रियों के मातारूप आचरण की तरह स्थिर (प्रकृतिदत्त) (होता) है।

6. यदि मनुष्य की आँख अँधकार को हरनेवाली (हो जाए) (तो) दीपक के द्वारा करने योग्य (कुछ भी) नहीं (होता है)। उसी प्रकार (यदि) स्वयं आत्मा सुख है, (तो) वहाँ इंन्द्रिय-विषय क्या (सुख) उत्पन्न करते हैं।

7. जिस प्रकार आकाश में सूर्य स्वयं ही प्रकाशरूप (है), ऊष्णरूप (है) और दिव्यरूप (है), उसी प्रकार लोक में सिद्ध भी ज्ञानरूप (है), सुखरूप (है) और वैसे ही दिव्यरूप (हैं)।

8. (जो) व्यक्ति देव, संन्यासी और गुरु की आराधना में और दान में तथा व्रतों में तथा उपवासादि में अनुरक्त हैं (वह) शुभ उपयोगस्वभाववाला (कहा गया है)।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

9. सपरं बाधासहियं विछिण्णं बंधकारणं विसमं।
जं इंदियेहिं लद्धं तं सोक्खं दुक्खमेव तहा।।

10. आदा कम्ममलिमसो धरेदि पाणे पुणो पुणो अण्णे।
ण चयदि जाव ममत्तं देहपधाणेसु विसयेसु।।

11. जो जाणादि जिणिंदे पेच्छदि सिद्धे तहेव अणगारे।
जीवेसु साणुकंपो उवओगो सो सुहो तस्स।।

12. रत्तो बंधदि कम्मं मुच्चदि कम्मेहिं रागरहिदप्पा।
एसो बंधसमासो जीवाणं जाण णिच्छयदो।।

13. देहा वा दविणा वा सुहदुक्खा वाध सत्तुमित्तजणा।
जीवस्स ण संति धुवा धुवोवओगप्पगो अप्पा।।

14. जो एवं जाणित्ता झादि परं अप्पगं विसुद्धप्पा।
सागारोऽणागारो खवेदि सो मोहदुग्गंठिं।।

15. जो खविदमोहकलुसो विसयविरत्तो मणो णिरुंभित्ता।
समवट्ठिदो सहावे सो अप्पाणं हवदि झादा।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

9. जो इन्द्रियों से प्राप्त सुख (है), वह दूसरे (की अपेक्षा)- सहित, बाधायुक्त, नाशवान, कर्मबन्ध का कारण तथा असमान (है), वह (सुख) (इन कारणों से) दुःख ही है।

10. जब तक कर्म से मलिन आत्मा देह मूलवाले विषयों में ममत्व नहीं छोड़ता है, (तब तक) (वह) बार-बार दूसरे जीवन को धारण करता है।

11. जो जितेन्द्रियों को जानता है, सिद्धों को समझता है, उसी प्रकार साधुओं को (समझता है) और (जो) जीवों में करुणासहित (है), उसका वह उपयोग (भाव) शुभ है।

12. रागी कर्म को बाँधता है। रागरहित आत्मा कर्मों से छुटकारा पाता है। यह जीवों के (कर्म) बन्ध का संक्षेप है। निश्चय से (तुम) जानो।

13. देह या सम्पत्ति या सुख-दुःख या इसी प्रकार शत्रुजन व मित्रजन आत्मा (व्यक्ति) के लिए स्थायी नहीं हैं। (केवल) आत्मा ही स्थायी और ज्ञान स्वरूप है।

14. जो गृहस्थ तथा मुनि इस प्रकार सर्वोत्तम आत्मा को जानकर (उसका) ध्यान करता है वह शुद्ध आत्मा (होता हुआ) आसक्ति की गाँठ को नष्ट कर देता है।

15. जो मन विषयों से विरक्त है, (जिसके द्वारा) आसक्ति रूपी मैल नष्ट कर दिया गया है, (जो) निज को (बहिर्मुखी होने से) रोककर स्वभाव में भली प्रकार से अवस्थित (होता है), वह ध्यान करनेवाला होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ - 6

भगवती अराधना

1. दुज्जणसंसग्गीए.पजहदि णियगं गुणं खु सुजणो वि।
सीयलभावं उदयं जह पजहदि अग्गिजोएण।।

2. णाणुज्जोवो जोवो णाणुज्जोवस्स णत्थि पडिघादो।
दीवेइ खेत्तमप्पं सूरो णाणं जगमसेसं।।

3. विज्जा वि भत्तिवंतस्स सिद्धिमुवयादि होदि सफला य।
किह पुण णिव्वुदिबीजं सिज्झहिदि अभत्तिमंतस्स।।

4. णाणुज्जोएण विणा जो इच्छदि मोक्खमग्गमुवगन्तुं।
गन्तुं कडिल्लमिच्छदि अंधलओ अंधयारम्मि।।

5. जह ते ण पियं दुक्खं तहेव तेसिंपि जाण जीवाणं।
एवं णच्चा अप्पोवमिवो जीवेसु होदि सदा।।

6. सव्वेसिमासमाणं हिदयं गब्भो व सव्वसत्थाणं।
सव्वेसिं वदगुणाणं पिंडो सारो अहिंसा हु।।

7. जीववहो अप्पवहो जीवदया होइ अप्पणो हु दया।
विसकंटओ व्व हिंसा परिहरियव्वा तदो होदि।।

8. जावइयाइं दुक्खाइं होंति लोयम्मि चदुगदिगदाइं।
सव्वाणि ताणि हिंसाफलाणि जीवस्स जाणाहि।।

9. कक्कस्सवयणं णिट्ठुरवयणं पेसुण्णहासवयणं च।
जं किंचि विप्पलावं गरहिदवयणं समासेण।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ - 6
भगवती अराधना

दुर्जन के संसर्ग से सज्जन भी निश्चित रूप से अपने गुण को त्याग देता है जैसे अग्नि के योग से पानी शीतल स्वभाव को त्याग देता है।

ज्ञान रूपी प्रकाश (ही) (वास्तविक) प्रकाश (है)। ज्ञान रूपी प्रकाश का विनाश नहीं है। सूर्य अल्प क्षेत्र को (ही) प्रकाशित करता है, ज्ञान समस्त विश्व को (प्रकाशित करता है)।

विद्या भी भक्तिवान की सिद्धि को प्राप्त होती है, और सफल होती है, फिर अभक्तिवान के लिए मोक्ष रूपी बीज (रत्नत्रय) कैसे सिद्ध (निष्पन्न) होगा ?

ज्ञान रूपी प्रकाश के बिना जो (ज्ञान एवं तप रूप) मोक्षमार्ग को जाने के लिए इच्छा करता है। (मानो) (वह) अन्धा अँधकार में जंगल जाने के लिए इच्छा करता है।

जैसे तुम्हारे लिए दुःख प्रिय नहीं (है), उसी प्रकार उन जीवों के लिए भी जान। इस प्रकार जानकर जीवों के प्रति सदा आत्म-सदृश होता है।

समस्त आश्रमों का हृदय, समस्त शास्त्रों का गर्भ और समस्त व्रत व गुणों का पिण्डरूप सार निश्चित रूप से अहिंसा है।

जीव-वध आत्म-वध होता है, जीव-दया निश्चित रूप से आत्म दया होती है इसलिए विषकंटक की तरह हिंसा त्यागी जानी चाहिए।

(इस) लोक में चारों गतियों में व्याप्त जितने दुःख हैं उन सभी को जीव की हिंसा के फल जानो।

कर्कश वचन, कठोर वचन, चुगली व हास्य वचन और जो कुछ भी निरर्थक वचन (है)। (वह) संक्षेप से निंदित वचन (है)।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

10. परुसं कडुयं वयणं वेरं कलहं च जं भयं कुणइ।
उत्तासणं च हीलणमप्पियवयणं समासेण।।

11. जलचन्दणससिमुत्ताचन्दमणी तह णरस्स णिव्वाणं।
ण करन्ति कुणइ जह अत्थज्जुयं हिदमधुरमिदवयणं।।

12. सच्चम्मि तवो सच्चम्मि संजमो तह वसे सया वि गुणा।
सच्चं णिबंधणं हि य गुणाणमुदधीव मच्छाणं।।

13. माया व होइ विस्सस्सणिज्जो पुज्जो गुरुव्व लोगस्स।
पुरिसो हु सच्चवाई होदि हु सणियल्लओव पिओ।।

14. जह मक्कडओ धादो वि फलं दट्ठूण लोहिदं तस्स।
दूरत्थस्स वि डेवदि जइ वि घित्तूण छंडेदि।।

15. एवं जं जं पस्सदि दव्वं अहिलसदि पाविदुं तं तं।
सव्वजगेण वि जीवो लोभाइट्ठो न तिप्पेदि।।

16. जह मारुओ पवड्ढइ खणेण वित्थरइ अब्भयं च जहा।
जीवस्स तहा लोभो मंदो वि खणेण वित्थरइ।।

17. लोभे य वड्ढिदे पुण कज्जाकज्जं णरो ण चिंतेदि।
तो अप्पणो वि मरणं अगणिंतो साहसं कुणदि।।

18. सव्वो उवहिदबुद्धी पुरिसो अत्थे हिदे य सव्वो वि।
सत्तिप्पहारविद्धो व होदि हिययंमि अदिदुहिदो।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कठोर व कड़वा वचन तथा जो बैर, कलह, भय, त्रास व तिरस्कार को उत्पन्न करता है, संक्षेप से अप्रिय वचन है।

जल, चन्दन, चन्द्रमा, मोती एवं चन्द्रकान्तमणी (भी) मनुष्य के लिए उस प्रकार तृप्ति नहीं करते हैं जैसी (तृप्ति) अर्थयुक्त हितकारी, मधुर एवं परिमित, वचन करता है।

सत्य में तप, सत्य में संयम तथा सैकड़ों गुण रहते हैं। सत्य ही निश्चित रूप से (समस्त) गुणों का आधार है जैसे समुद्र मछलियों का (आधार) है।

सत्यवादी व्यक्ति लोगों के लिए माता की तरह विश्वासयोग्य होता है, गुरु की तरह पूज्य, अपने आत्मीय की तरह निश्चित रूप से (लोगों के लिए) प्रिय होता है।

जैसे तृप्त हुआ बन्दर भी लाल (पके हुए) फल को देखकर दूरस्थित उस (फल) के लिए कूदता है, यद्यपि ग्रहण करके ही छोड़ देता है।

इस प्रकार जीव जिस-जिस द्रव्य को देखता है, उस-उस को पाने के लिए इच्छा करता है। लोभ के आश्रित (वह) समस्त जग से भी सन्तुष्ट नहीं होता है।

जैसे हवा क्षण भर में बढ़ती है और जैसे मेघ फैल जाता है। उसी तरह जीव का मन्द लोभ भी क्षण भर में बढ़ जाता है।

बढ़ा हुआ लोभ होने पर फिर मनुष्य कार्य-अकार्य को नहीं विचारता है। फिर अपनी मृत्यु को भी न गिनता हुआ कोई भी घोर अपराध करता है।

सभी व्यक्ति माया (धन) से प्रछन्न बुद्धिवाले (हैं) और धन छिन जाने पर सब ही शक्ति प्रहार से घायल की तरह हृदय में अत्यन्त दुःखी होते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

19. अत्थम्मि हिदे पुरिसो उम्मत्तो विगयचेयणो होदि।
मरदि व हक्कारकिदो अत्थो जीवं खु पुरिसस्स।।

20. गन्थच्चाओ इन्दियणिवारणे अंकुसो व हत्थिस्स।
णयरस्स खाइया वि य इन्दियगुत्ती असंगत्तं।।

21. ण गुणे पेच्छदि अववददि गुणे जंपदि अजंपिदव्वं च।
रोसेण रुद्दहिदओ णारगसीलो णरो होदि।।

22. माणी विस्सो सव्वस्स होदि कलहभयवेरदुक्खाणि।
पावदि माणी णियदं इहपरलोए य अवमाणं।।

23. सयणस्स जणस्स पिओ णरो अमाणी सदा हवदि लोए।
णाणं जसं च अत्थं लभदि सकज्जं च साहेदि।।

24. तेलोक्केण वि चित्तस्स णिव्वुदी णत्थि लोभघत्थस्स।
संतुट्ठो हु अलोभो लभदि दरिद्दो वि णिव्वाणं।।

25. विज्जूव चंचलाइं दिट्ठपणट्ठाइं सव्वसोक्खाइं।
जलबुब्बुदोव्व अधुवाणि हुंति सव्वाणि ठाणाणि।।

26. रत्तिं एगम्मि दुमे सउणाणं पिण्डणं व संजोगो।
परिवेसोव अणिच्चो इस्सरियाणाधाणारोग्गं।।

27. इन्दियसामग्गी वि अणिच्चा संझाव होइ जीवाणं।
मज्झण्हं व णराणं जोव्वणमणवट्ठिदं लोए।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

धन हरे जाने पर व्यक्ति पागल और चेतनारहित हो जाता है। हाहाकार करता हुआ मर जाता है। धन निश्चित रूप से व्यक्ति का प्राण है।

परिग्रह त्याग इन्द्रियों को (विषयों से) दूर रखने में (निमित्त है) जैसे हाथी के लिए अंकुश और नगर (की रक्षा) के लिए खाई। (वास्तव में) असंगता ही इन्द्रिय संयम (रक्षक) है।

(क्रोधी व्यक्ति दूसरों के) गुणों को नहीं देखता है। (दूसरों के) गुणों की निन्दा करता है। (जो) (बात) कहने योग्य नहीं है कहता है। क्रोध के कारण रौद्र हृदय- वाला (वह) मनुष्य नारकी होता है।

अभिमानी (व्यक्ति) सभी के लिए द्वेष करने योग्य होता है। अभिमानी नियम से इस (लोक) में तथा पर लोक में कलह, भय, वैर, दुःखों को तथा अपमान को पाता है।

मान रहित व्यक्ति लोक में सदा (अपने) स्वजन और (पर) जन का प्रिय होता है। ज्ञान, यश व धन को प्राप्त करता है और अपने कार्य को सिद्ध करता है।

लोभ से ग्रस्त (व्यक्ति) के मन की तीनों लोक से भी तृप्ति नहीं होती है। किन्तु निर्लोभी सन्तुष्ट दरिद्र (व्यक्ति) भी निर्वाण को प्राप्त करता है।

बिजली की तरह चंचल समस्त सुख नष्ट होते देखे गये हैं। समस्त स्थान (जहाँ जीव रहते हैं) जल के बुलबुले की तरह अस्थिर होते हैं।

ऐश्वर्य, आज्ञा, धनधान्य व आरोग्य रात को एक वृक्ष पर (मिले) पक्षियों के समूह की तरह संयोग (मात्र) है। बादलों से ढके सूर्य चन्द्र की तरह अनित्य है।

संसार में जीवों की इन्द्रिय सामग्री संध्या की तरह अनित्य होती है। (और) मनुष्यों का यौवन दोपहर की तरह अस्थिर (चंचल) (होता) है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

28. चन्दो हीणो व पुणो वड्ढदि एदि य उदू अदीदो वि।
णदु जोव्वणं णियत्तइ णदीजलगदछिद्दं चेव।।

29. धावदि गिरिणदिसोदं व आउगं सव्वजीवलोगम्मि।
सुकुमालदा वि हायदि लोगे पुव्वण्हछाही वे।।

30. हिमणिचओ वि व गिहसयणासणभंडाणि होंति अधुवाणि।
जसकित्ती वि अणिच्चा लोए संज्झब्भरागोव्व ।।

31. इन्दियदुद्दन्तस्सा णिग्घिप्पन्ति दमणाणखलिणेहिं।
उप्पहगामी णिग्घिप्पन्ति हु खलिणेहिं जह तुरया।।

32. झाणं कसायरोगेसु होदि वेज्जो तिगिछ्दे कुसलो।
रोगेसु जहा वेज्जो पुरिसस्स तिगिछओ कुसलो।।

33. झाणं विसयछुहाए य होइ अण्णं जहा छुहाए वा।
झाणं विसयतिसाए उदयं उदयं व तण्हाए।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

28. चन्द्रमा घटता (है) और फिर बढ़ता है। बीती हुई ऋतु (फिर) आती है, (किन्तु) नदी के जल में (प्रवाह में) गई हुई छोटी मछली की तरह यौवन नहीं लौटता है।

29. सर्व जीवलोक में आयु पहाड़ी नदी के प्रवाह की तरह दौड़ती है। (तथा) लोक में सुकुमारता भी पूर्वार्ध की छाया (की तरह) कम होती है।

30. लोक में घर, शय्या, आसन, भांड भी बर्फ के समूह की तरह अध्रुव होते हैं। (तथा) यश और कीर्ति भी संध्या के आकाश की लालिमा की तरह अनित्य (होते हैं)।

31. (जिस प्रकार) कुमार्ग गामी घोड़े लगाम द्वारा निश्चित रूप से वश में किए जाते हैं, (उसी प्रकार) इन्द्रिय रूपी दुर्दम घोड़े दमनरूपी ज्ञान की लगाम से नियन्त्रित किए जाते हैं।

32. जिस प्रकार व्यक्ति के रोगों में कुशल वैद्य चिकित्सा करता है। (उसी प्रकार) ध्यान (रूपी) वैद्य कषाय रूपी रोगों में कुशल चिकित्सक होता है।

33. जैसे भूख में अन्न (कारगार) होता है (वैसे ही) विषयरूपी भूख में ध्यान (रूपी) (अन्न उपयोगी होता है)। जैसे प्यास में पानी (उपयोगी होता है) (उसी तरह) विषयरूपी प्यास में ध्यान (रूपी) जल (उपयोगी होता है)।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ - 7

अर्हत प्रवचन

1. मेह्य होज्ज न होज्ज व लोए जीवाण कम्मवसगाणं।
उज्जाओ पुण तह वि हु णाणंमि सया न मोत्तव्वो।।

2. निस्संते सियामुहरी, बुद्धाणं अन्तिए सया।
अट्ठजुत्ताणि सिक्खिज्जा, निरट्ठाणि उवज्जए।।

3. थेवं थेवं धम्मं करेह जइ ता बहुं न सक्केह।
पेच्छह महानईओ बिंदूहिं समुद्दभूयाओ।।

4. जीवेसु मित्तचिंता मेत्ती करुणा य होइ अणुकम्पा।
मुदिदा जदिगुणचिंता सुहदुक्खधियामणमुवेक्खा।।

5. तक्कविहूणो विज्जो लक्खणहीणो य पंडिओ लोए।
भावविहूणो धम्मो तिण्णि वि गरुई विडम्बणया।।

6. कोई डहिज्ज जह चंदणं णरो दारुगं च बहुमोल्लं।
णासेइ मणुस्सभवं पुरिसो तह विसयलोहेण।।

7. जेण तच्चं विबुज्झेज्ज जेण चित्तं णिरुज्झदि।
जेण अत्ता विसुज्झेज्ज तं णाणं जिणसासणे।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ - 7
अर्हत प्रवचन

1. लोक में कर्म के अधीन जीवों के मेधा हो चाहे न हो, ज्ञान की प्राप्ति के लिए उद्यम कभी नहीं छोड़ना चाहिए।

2. सदा शान्त रहो, सोच कर बोलो, सदा विद्वानों के पास रहो। अर्थयुक्त बातों को सीखो और निरर्थक बातों को छोड़ दो।

3. यदि अधिक न कर सको तो थोड़ा-थोड़ा ही धर्म करो। महानदियों को देखो, बूँद-बूँद से वे समुद्र बन जाती हैं।

4. जीव मात्र में मित्रता का विचार करना मैत्री, दुःखियों में दया करना करुणा, महान आत्माओं के गुणों का चिन्तन करना मुदिता और सुख तथा दुःख में समान भावना रखना उपेक्षा कहलाती है।

5. तर्क (ऊहापोह-विवेक) रहित वैद्य, लक्षणरहित पण्डित और भावरहित धर्म ये तीनों ही भारी विडम्बनाएँ हैं।

6. जैसे कोई आदमी चन्दन को और बहुमूल्य अगर आदि काष्ठ को जलाता है, वैसे ही यह मनुष्य विषयों की तृष्णा से मनुष्यभव का नाश कर देता है।

7. जिससे वस्तु का यथार्थ स्वरूप जान सके, जिससे चित्त का व्यापार रुक जावे और जिससे आत्मा विशुद्ध हो जावे; जिनशासन में वही ज्ञान कहलाता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

8. जेण राग़ाविरज्जेज्ज, जेण सेएसु रज्जदि।
जेण मेत्तीं पभावेज्ज, तं णाणं जिणसासणे।।

9. कोधं खमाए माणं च मद्देवणाज्जवं च मायं च।
संतोसेण य लोहं जिणदु खु चत्तारि वि कसाए।।

10. जध इंधणेहिं अग्गी लवणसमुद्दो णदीसहस्सेहिं।
तह जीवस्स ण तित्ती अत्थि तिलोगे वि लद्धम्मि।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

8. जिससे रागभाव से विरक्ति, जिससे आत्मकल्याण में अनुरक्ति और जिससे सर्व जीवों में मैत्रीभाव प्रभावित हो, जिनशासन में वही ज्ञान कहलाता है।

9. क्षमा से क्रोध को, मार्दव से मान को, आर्जव से माया को और सन्तोष से लोभ को — इस प्रकार चारों कषायों को जीतो।

10. जैसे आग ईंधन से और लवणसुमद्र हजारों नदियों से तृप्त नहीं होता, वैसे ही तीनों लोकों की प्राप्ति हो जाने पर भी जीव की तृप्ति नहीं होती।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ - 8
महुबिंदु-दिट्ठंतं

कोइ पुरिसो बहुदेसपट्टणवियारी अडविं सत्थेणं समं पविट्ठो। चोरेहिं य सत्थो अब्भाहओ। सो पुरिसो सत्थपरिभट्ठो मूढदिसो परिब्भमंतो दाणदुद्दिणमुहेण वणगएण अभिभूओ। तेण पलायमाणेण पुराणकूवो तणदब्भपरिच्छन्नो दिट्ठो। तस्स तडे महंतो वडपायवो। तस्स पारोहो कूवमणुपविट्ठो।

सो पुरिसो भयाभिभूओ पारोहमवलंबिऊण ठिओ कूवमज्झे; आलोएइ य– अहो तत्थ अयगरो महाकाओ वियारियमुहो गसिउकामो तं पुरिसमवलोएइ। तिरियं पुण चउद्दिसिं सप्पा भीसणा डसिउकामा चिट्ठंति। पारोहमुवरिं किण्हसुक्किला दो मूसया छिंदंति। हत्थी हत्थेण केसग्गे परामुसइ। तम्मि य पायवे महापरिणाहं महुं ठियं। गयसंचालिए य पायवे वायविहूया महुबिंदु तस्स पुरिसस्स केइ मुहमाविसंति, ते य आसाएइ। महुरा य डसिउकामा परिवयंति समंतओ।

तस्स एवंगयस्स किं सुहं होइ ? जे महुबिंदु अहिलसइ तत्तियं तस्स सुहं सेसं दुक्खं ति। उवसंहारो पुण दिट्ठंतस्स —

जहा सो पुरिसो, तहा संसारी जीवो। जहा सा अडवी, तहा जम्मजरारोगमरण-बहुला संसाराडवी। जहा वणहत्थी, तहा मच्चू। जहा कूवो, तहा देवभवो मणुस्सभवो य। जहा अयगरो, तहा नरगतिरियगईओ। जहा सप्पा, तहा कोहमाणमायालोहा चत्तारि कसाया दोग्गइगमणनायगा। जहा पारोहो, तहा जीवियकालो। जहा मूसगा, तहा कालसुक्किला पक्खा राइंदियदसणेहिं परिक्खिवति जीवियं। जहा दुमो, तहा कम्म-बंधणहेऊ अन्नाणं अविरई मिच्छत्तं च। जहा महुं, तहा सद्दफरिसरसरूवगंधा इंदियत्था। जहा महुयरा, तहा आगंतुगा सरीरुग्गया य बाही।

तस्सेव भयसंकडे वट्टमाणस्स कओ सुहं ? महुबिंदुरसासायओ केवलं सुहकप्पणा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ - 8
मधुबिंदु - दृष्टान्त

कोई पुरुष अनेक देशों में विचरण करनेवाले व्यापारियों के समूह के साथ जंगल में पहुँचा और व्यापारियों का समूह चोरों के द्वारा आघात को प्राप्त हुआ। वह पुरुष व्यापारियों के समूह से निकला (और) दिग्भ्रमित सा भटकता हुआ आँधी-तूफान वाले दिन भयानक मुखवाले जंगली हाथी के द्वारा पराजित हुआ। भागते हुए उसके द्वारा तिनके व घास से ढका हुआ पुराना कुआ देखा गया। उसके किनारे पर बड़ा बड़ का पेड़ था। उसकी शाखा कुएँ में प्रवेश कर रही थी।

भय से युक्त, वह पुरुष शाखा पर लटककर कुएँ के मध्य में स्थित हुआ और देखता है, वहाँ विशालकायवाला अजगर मुँह फाड़े हुए खाने की इच्छा से उस पुरुष को देखता है। फिर तिरछा होकर देखता है। चारों दिशाओं में भीषण सर्प डसने की इच्छा से बैठे हैं। शाखा के ऊपर काले व सफेद दो चूहे उस शाखा को छेद रहे हैं। हाथी सूण्ड से उस शाखा को हिलाता है। उस पेड़ पर बहुत अधिक मात्रा में शहद था। हाथी द्वारा हिलाए जाने पर पेड़ पर हवा से हिलती हुई शहद की बूँद उस पुरुष के मुँह में आती है और वह स्वाद लेता है। भौंरे खाने की इच्छा से उस पर चारों तरफ सीधे गिरते हैं।

उसका इस प्रकार जाना क्या सुखकारी है? जो (व्यक्ति) मधु के बूँद की अभिलाषा करता हैं, उसका क्षणिक (तृप्ति रूपी) सुख भी शेष दुःखमय हो जाता है। इस प्रकार (इस) दृष्टान्त का उपसंहार (यह) है—

जिस प्रकार वह पुरुष है उसी प्रकार संसारी जीव है। जैसे वह जंगल है उसी तरह जन्म, बुढ़ापा, रोग, मृत्यु से व्याप्त संसाररूपी जंगल है। जिस प्रकार जंगल का हाथी है उसी प्रकार मृत्यु है। जिस प्रकार कुआ (है) उसी प्रकार देवभव और मनुष्यभव है। जिस प्रकार अजगर है उसी प्रकार नरक तिर्यंचगति है। जिस प्रकार सर्प है उसी प्रकार क्रोध, मान, माया, लोभ चार कषाय दुर्गति की ओर ले जाने वाले नायक हैं। जिस तरह शाखा है उसी तरह जीवनकाल है। जिस प्रकार चूहे हैं उसी प्रकार कृष्ण व शुक्ल पक्ष रात-दिन दाँतों से जीवन को नष्ट कर रहे हैं। जैसे पेड़ है, वैसे कर्मबन्धन हेतु अज्ञान, अविरति व मिथ्यात्व है। जैसे शहद है वैसे शब्द, रूप, स्पर्श, रस, गन्ध इन्द्रियों से जानने योग्य वस्तुएँ हैं, जिस प्रकार भौंरे हैं, उसी प्रकार आनेवाली शरीर से उत्पन्न व्याधि है।

उस शरीर को भी भय व दुःख में कहाँ सुख है? शहद की बूँद का स्वाद लेनेवाली सिर्फ सुख की कल्पना है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ - 9
रोहिणीणाए

रायगिहे नयरे धण्णे नामं सत्थवाहे परिवसइ। तस्स णं धण्णस्स सत्थवाहस्स भद्दा नामं भारिया होत्था।

तस्स णं धण्णस्स सत्थवाहस्स पुत्ता भद्दाए भारियाए अत्तया चत्तारि सत्थवाह-दारया होत्था, तंजहा – धणपाले, धणदेवे, धणगोवे, धणरक्खिए।

तस्स णं धण्णस्स सत्थवाहस्स चउण्हं पुत्ताणं भारियाओ चत्तारि सुण्हाओ होत्था, तंजहा– उज्झिया, भोगवइया, रक्खिया, रोहिणिया।

जेट्ठं सुण्हं उज्झिइयं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी –

'तुमं णं पुत्ता ! मम हत्थाओ इमे पंच सालिअक्खए गेण्हाहि, जया णं अहं पुत्ता ! तुमं इमे पंच सालिअक्खए जाएज्जा, तया णं तुमं मम इमे पंच सालिअक्खए पडिनिज्जाएज्जासि'।

एवं भोगवइयाए वि, णवरं सा छोल्लेइ, छोल्लित्ता अणुगिलइ, अणुगिलित्ता सकम्मसंजुत्ता जाया।

एवं रक्खिया वि। संपेहित्ता ते पंच सालिअक्खए सुद्धे वत्थे बंधइ, बंधित्ता रयणकरंडियाए पक्खिवेइ, पक्खिवित्ता उसीसामूले ठावेइ, ठावित्ता, तिसंझं पडिजागरमाणी पडिजागरमाणी विहरइ।

चउत्थिं रोहिणीयं सुण्हं सद्दावेइ। संपेहित्ता कुलघरपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी –

'तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! एए पंच सालिअक्खए गेण्हह, गेण्हित्ता पढमपाउसंसि। करित्ता इमे पंच सालिअक्खए वावेह। करित्ता सारक्खेमाणा संगोवेमाणा अणुपुव्वेणं संवड्ढेह।

तए णं ते सालिअक्खए अणुपुव्वेणं सारक्खिज्जमाणा संगोविज्जमाणा संवड्ढिज्जमाणा साली जाया,

- तए णं ते कोडुंबिया ते साली नवएसु घडएसु पक्खिवंति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ - 9

रोहिणी के उदाहरण में (वर्णित शिक्षा)

राजगृह नगर में धन्य नामक सार्थवाह निवास करता था उस धन्य सार्थवाह की भद्रा नामक भार्या थी।

उस धन्य सार्थवाह के पुत्र और भद्रा भार्या के आत्मज (उदरजात) चार सार्थवाह पुत्र थे। उनके नाम इस प्रकार थे– धनपाल, धनदेव, धनगोप, धनरक्षित।

उस धन्य सार्थवाह के चार पुत्रों की चार भार्याएँ – सार्थवाह की पुत्रवधुएँ थीं। उनके नाम इस प्रकार हैं – उज्झिका, भोगवती, रक्षिका और रोहिणी।

जेठी कुलवधु उज्झिका को बुलाया। बुलाकर इस प्रकार कहा –

'हे पुत्री ! तुम मेरे हाथ से यह पाँच चावल के दाने लो। हे पुत्री ! जब मैं तुम से यह पाँच चावल के दाने माँगूँ, तब तुम यही पाँच चावल के दाने मुझे वापिस लौटाना।

इसी प्रकार दूसरी पुत्रवधु भोगवती को भी बुलाकर पाँच दाने दिये। उसने वह दाने छीले और छीलकर निगल गईं। निगल कर अपने काम में लग गई।

इसी प्रकार तीसरी रक्षिका के सम्बन्ध में जानना चाहिए। विचार करके (उसने) वे चावल के पाँच दाने शुद्ध वस्त्र में बाँधे। बाँध कर रत्नों की डिबिया में रख लिए। रखकर सिरहाने के नीचे स्थापित किए। स्थापित करके प्रातः मध्याह्न और सायंकाल – इन तीनों संध्याओं के समय उनकी सार-सम्भाल करती हुई रहने लगी।

चौथी पुत्रवधु रोहिणी को बुलाया। बुलाकर उसे भी वैसा ही कहकर पाँच दाने दिये। (उसने) विचार करके अपने कुलगृह (मैके-परिवार) के पुरुषों को बुलाया और बुलाकर इस प्रकार कहा –

देवानुप्रियो! तुम पाँच शालि अक्षतों को ग्रहण करो। ग्रहण करके पहली वर्षा ऋतु में पाँच दाने बो देना। इनकी रक्षा और संगोपना करते हुए अनुक्रम से इन्हें बढ़ाना।

तत्पश्चात् संरक्षित, संगोपित और संवर्धित किए जाते हुए वे शालि-अक्षत अनुक्रम से शालि (के पौधे) हो गये।

तत्पश्चात् कौटुम्बिक पुरुषों ने उन प्रस्थ-प्रमाण शालिअक्षतों को नवीन घड़ों में भरा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

– तए णं ते कोडुंबिया दोच्चम्मि वासारत्तंसि तच्चंसि वासारत्तंसि चउत्थे वासारत्ते बहवे कुंभसया जाया। तए णं तस्स धण्णस्स पंचमयंसि संवच्छरंसि परिणममाणंसि संपेहित्ता जेट्ठं उज्झियं सद्दावेइ। सद्दावित्ता एवं वयासी –

'तं णं पुत्ता ! मम ते सालिअक्खए पडिनिज्जाएहि।'
उवागच्छित्ता धण्णं सत्थवाहं एवं वयासी – 'एए णं ते पंच सालिअक्खए'
पुत्ता ! एए चेव पंच सालिअक्खए उदाहु अन्ने ?
ते चेव पंच सालिअक्खए, एए णं अन्ने।
तए णं से धण्णे उज्झियाए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म आसुरत्ते

उज्झिइयं बाहिरपेसणकारिं च ठवेइ।
– एवं भोगवइया वि अब्भिंतरियं पेसणकारिं महाणसिणिं ठवेइ।

– एवं रक्खिया वि।
तए णं से धण्णे सत्थवाहे रक्खियं एवं वयासी – 'किं णं पुत्ता ? ते चेव एए पंच सालिअक्खए, उदाहु अण्णे ?' त्ति।
रक्खिया वयासी– ते पंच सालिअक्खए सुद्धे वत्थे जाव तिसंझं पडिजागरमाणी यावि विहरामि। तओ एएणं कारणेणं ताओ ! ते चेव एए पंच सालिअक्खए, णो अन्ने।
– तए णं से धण्णे सत्थवाहे रक्खियाए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा हट्ठतुट्ठे सावतेज्जस्स य भंडागारिणिं ठवेइ।
– रोहिणिया वि एवं चेव। नवरं – 'तुब्भे ताओ ! मम सुबहुयं सगडीसागडं दलाहि, जेण अहं तुब्भं ते पंच सालिअक्खए पडिनिज्जाएमि।'

तुब्भे ते पंच सालिअक्खए सगडसागडेणं निज्जाएमि।'

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषों ने दूसरी वर्षा ऋतु में, तीसरी वर्षाऋतु में, चौथी वर्षा ऋतु में इसी प्रकार करने से सैकड़ों कुम्भ प्रमाण शालि हो गए। तत्पश्चात् जब पाँचवाँ वर्ष चल रहा था तब सार्थवाह ने विचार करके पुत्रवधु उज्झिका को बुलाया और बुलाकर इस प्रकार कहा–

तो हे पुत्री ! मेरे वह शालिअक्षत वापिस दो।

सार्थवाह के समीप आकर बोली – 'ये हैं वे पाँच शालिअक्षत।

पुत्री ! क्या वही ये शालि के दाने हैं अथवा ये दूसरे हैं ?

ये वही शालि के दाने नहीं हैं। ये दूसरे हैं।

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह उज्झिका से यह अर्थ सुनकर और हृदय में धारण करके क्रुद्ध हुए, कुपित हुए।

उन्होंने उज्झिका को दासी के कार्य करनेवाली के रूप में नियुक्त किया।

इसी प्रकार भोगवती के विषय में जानना चाहिए। उसे रसोईदारिन का कार्य करने वाली के रूप में नियुक्त किया।

इसी प्रकार रक्षिका के विषय में जानना चाहिए।

उस समय धन्य सार्थवाह ने रक्षिका से इस प्रकार कहा– 'हे पुत्री ! क्या यह वही पाँच शालिअक्षत हैं या दूसरे हैं?'

रक्षिका बोली – 'तात ! इन पाँच शालि के दानों को शुद्ध वस्त्र में बाँधा, यावत् तीनों संध्याओं में सार-सम्भाल करती रहती हूँ। अतएव हे तात ! ये वही शालि के दाने हैं, दूसरे नहीं।

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह रक्षिका से यह अर्थ सुनकर हर्षित और सन्तुष्ट हुआ। उसे अपने (सम्पत्ति) की भाण्डा-गारिणी (भण्डारी के रूप में) नियुक्त कर दिया।

रोहिणी के विषय में भी ऐसा ही कहना चाहिए। विशेष यह है कि जब धन्य सार्थवाह ने उससे पाँच दाने माँगे तो उसने कहा– 'तात ! आप मुझे बहुत-से गाड़े-गाड़ियाँ दो, जिससे मैं आपको वह पाँच शालि के दाने लौटाऊँ ।'

हे तात ! मैं आपको वह पाँच शालि के दाने गाड़ा-गाड़ियों में भरकर देती हूँ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तए णं रायगिहे नयरे बहुजणो अन्नमन्नं एवमाइक्खइ– 'धन्ने णं देवाणुप्पिया ! धण्णे सत्थवाहे, जस्स णं रोहिणिया सुण्हा, जीए णं पंच सालिअक्खए सगडसागडिएणं निज्जाइए।

तए णं से धण्णे सत्थवाहे ते पंच सालिअक्खए सगडसागडेणं निज्जाइए पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठे पडिच्छइ। रोहिणीयं सुण्हं तस्स कुलघरवग्गस्स बहुसु कज्जेसु वड्ढावियं पमाणभूयं ठावेइ।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तब राजगृह नगर में बहुत से लोग आपस में इस प्रकार कहकर प्रशंसा करने लगे– 'देवानुप्रियो ! धन्य सार्थवाह धन्य है, जिसकी पुत्रवधु रोहिणी है, जिसने पाँच शालि के दाने छकड़ा-छकड़ियों में भरकर लौटाये।

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह उन पाँच शालि के दानों को छकड़ा-छकड़ियों द्वारा लौटाये देखता है। देखकर हृष्ट और तुष्ट होकर उन्हें स्वीकार करता है। रोहिणी पुत्रवधु को उस कुलगृहवर्ग (परिवार) के अनेक कार्यों में सर्वेसर्वा नियुक्त किया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ - 10

मेरुप्रभ हाथी (ज्ञाताधर्म कथा)

– तए णं तुमं मेहा ! वणयरेहिं निव्वत्तिनामधेज्जे जाव चउदंते मेरुप्पभे हत्थिरयणे होत्था।

– तए णं तुमं अन्नया कयाइ गिम्हकालसमयंसि जेट्ठामूले वणदव-जालापलित्तेसु वणंतेसु सुधूमाउलासु दिसासु जाव मंडलवाए व्व परिब्भमंते भीए तथ्ये जाव संजायभए बहूहिं हत्थीहि य जाव कलभियाहि य सद्धिं संपरिवुडे सव्वओ समंता दिसोदिसिं विप्पलाइत्था।

– तए णं तुमं मेहा ! अन्नया पढमपाउसंसि महावुट्ठिकायंसि सन्निवइयंसि गंगाए महानदीए अदूरसामंते बहूहिं हत्थीहिं जाव कलभियाहि य सत्तहि य हत्थिसएहिं संपरिवुडे एगं महं जोयणपरिमंडलं महइमहालयं मंडलं घाएसि।

– तए णं तुमं मेहा ! अन्नया कयाइं कमेणं पंचसु उउसु समइक्कंतेसु गिम्हकाल-समयंसि जेट्ठामूले मासे पायव-संघंस-समुट्ठिएणं जाव संवट्टिएसु मिय-पसु-पक्खि-सिरीसिवेसु दिसोदिसिं विप्पलायमाणेसु तेहिं बहूहिं हत्थीहि य सद्धिं जेणेव मंडले तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

– तए णं तुमं मेहा ! पाएणं गत्तं कंडुइस्सामि त्ति कट्टु पाए उक्खित्ते, तंसि च णं अंतरंसि अन्नेहिं बलवंतेहिं सत्तेहिं पणोलिज्जमाणे पणोलिज्जमाणे ससए अणुपविट्ठे।

– तए णं तुमं मेहा ! गायं कंडुइत्ता पुणरवि पायं पडिनिक्खमिस्सासि त्ति कट्टु तं ससयं अणुपविट्ठं पाससि, पासित्ता पाणाणुकंपयाए भूयाणुकंपयाए जीवाणुकंपयाए सत्ताणुकंपयाए से पाए अंतरा चेव संधारिए, नो चेव णं णिक्खित्ते।

तए णं मेहा ! ताए पाणाणुकंपयाए जाव सत्ताणुकंपयाए संसारे परित्तीकए, माणुस्साउए निबद्धे।

– तए णं से वणदवे अड्ढाइज्जाइं राइंदियाइं तं वणं झामेइ, झामेत्ता, निट्ठिए, उवरए, उवसंते, विज्झाए यावि होत्था।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ - 10

मेरुप्रभ हाथी (ज्ञाताधर्म कथा) (मेघकुमार का पूर्व भव)

तत्पश्चात् हे मेघ ! वनचरों ने तुम्हारा नाम मेरुप्रभ रखा। तुम चार दाँतोंवाले हस्तिरत्न हुए।

तब एक बार कभी ग्रीष्मकाल के अवसर पर ज्येष्ठ मास में, वन के दावानल की ज्वालाओं से वन-प्रदेश जलने लगे। दिशाएँ धूम से व्याप्त हो गई। उस समय तुम बवण्डर की तरह इधर-उधर भागदौड़ करने लगे। भयभीत हुए, व्याकुल हुए और बहुत डर गए। तब बहुत से हाथियों यावत् हथिनियों आदि के साथ, उनसे परिवृत होकर, चारों ओर एक दिशा से दूसरी दिशा में भागे।

तत्पश्चात् हे मेघ ! तुमने एक बार कभी प्रथम वर्षाकाल में खूब वर्षा होने पर गंगा महानदी के समीप बहुत-से हाथियों यावत् हथिनियों से अर्थात् सात सौ हाथियों से परिवृत होकर एक योजन परिमित बड़े घेरेवाला विशाल मण्डल बनाया।

हे मेघ ! किसी अन्य समय पाँच ऋतुएँ व्यतीत हो जाने पर ग्रीष्मकाल के अवसर पर, ज्येष्ठ मास में, वृक्षों की परस्पर की रगड़ से उत्पन्न हुए दावानल के कारण यावत् अग्नि फैल गई और मृग, पशु, पक्षी तथा सरीसृप आदि भागदौड़ करने लगे। तब तुम बहुत-से हाथियों आदि के साथ जहाँ वह मण्डल था, वहाँ जाने के लिए दौड़े।

तत्पश्चात् हे मेघ ! तुमने 'पैर से शरीर खुजाऊँ' ऐसा सोचकर एक पैर ऊपर उठाया। इसी समय उस खाली हुई जगह में, अन्य बलवान् प्राणियों द्वारा प्रेरित-धकियाया हुआ एक शशक प्रविष्ट हो गया।

तब हे मेघ ! तुमने पैर खुजाकर सोचा कि मैं पैर नीचे रखूँ, परन्तु शशक को पैर की जगह में घुसा हुआ देखा। देखकर द्वीन्द्रियादि प्राणों की अनुकम्पा से, वनस्पति रूप भूतों की अनुकम्पा से, पंचेन्द्रिय जीवों की अनुकम्पा से तथा वनस्पति के सिवाय शेष चार स्थावर सत्त्वों की अनुकम्पा से वह पैर अधर ही उठाए रखा, नीचे नहीं रखा।

हे मेघ ! तब उस प्राणानुकम्पा यावत् (भूतानुकम्पा, जीवानुकम्पा तथा) सत्त्वानुकम्पा से तुमने संसार परीत किया और मनुष्यायु का बन्ध किया।

तत्पश्चात् वह दावानल अढ़ाई अहोरात्र पर्यन्त उस वन को जलाकर पूर्ण हो गया, उपरत हो गया, उपशान्त हो गया और बुझ गया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

– तए णं तुमं मेहा ! जुन्ने जराजज्जरियदेहे सिढिलवलितयापिणिद्धगत्ते दुब्बले किलंते जुंजिए पिवासिए अत्थामे अबले अपरक्कमे अचंकमणे वा ठाणुखंडे वेगेण विप्पसरिस्सामि त्ति कट्टु पाए पसारेमाणे विज्जुहए विव रययगिरिपब्भारे धरणियलंसि सव्वंगेहिं य सन्निवइए।

– तए णं तव मेहा ! सरीरगंसि वेयणा पाउब्भूया उज्जला जाव (विउला कक्खडा पगाढा चंडा दुक्खा दुरहियासा। पित्तज्जरपरिगयसरीरे) दाहवक्कंतीए यावि विहरसि। तए णं तुमं मेहा ! तं उज्जलं जाव दुरहियासं तिन्नि राइंदियाइं वेयणं वेएमाणे विहरित्ता एगं वाससयं परमाउं पालइत्ता इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे रायगिहे नयरे सेणियस्स रन्नो धारिणीए देवीए कुच्छिंसि कुमारत्ताए पच्चायाए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हे मेघ ! उस समय तुम जीर्ण, जरा से जर्जरित-शरीर वाले, शिथिल एवं सलों-वाली चमड़ी से व्याप्त गात्रवाले दुर्बल, थके हुए, भूखे-प्यासे, शारीरिक शक्ति से हीन, सहारा न होने से निर्बल, सामर्थ्य से रहित और चलने-फिरने की शक्ति से रहित एवं ठूंठ की भाँति स्तब्ध रह गये। 'मैं वेग से चलूँ' ऐसा विचारकर ज्यों ही पैर पसारा कि विद्युत् से आघात पाये हुए रजतगिरि के शिखर के समान सभी अंगों से तुम धड़ाम से धरती पर गिर पड़े।

तत्पश्चात् हे मेघ ! तुम्हारे शरीर में उत्कट (विपुल, कर्कश—कठोर, प्रगाढ़, दुःखमय और दुस्सह) वेदना उत्पन्न हुई। शरीर पित्तज्वर से व्याप्त हो गया और शरीर में जलन होने लगी। तुम ऐसी स्थिति में रहे। तब हे मेघ ! तुम उस उत्कट यावत् दुस्सह वेदना को तीन रात्रि-दिवस पर्यन्त भोगते रहे। अन्त में सौ वर्ष की पूर्ण आयु भोगकर इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप में भारतवर्ष में राजगृह नगर में श्रेणिक राजा की धारिणी देवी की कूंख में कुमार के रूप में उत्पन्न हुए।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ - 11

सिप्पिपुत्तस्स कहा[1]

पिउणा सिक्खिओ पुत्तो पारं जाइ कलद्धिणो।
वण्णिओ जइ नो होज्जा जह सिप्पिअअंगओ।।

अवंतीए पुरीए इंददत्तो नाम सिप्पिवरो अहेसि, सो सिप्पकलाहि सव्वंमि जयंमि पसिद्धो होत्था। इमस्स सरिच्छो अन्नो को वि नत्थि। एयस्स पुत्तो सोमदत्तो नाम। सो पिउस्स सगासंमि सिप्पकलं सिक्खंतो कमेण पिअराओ वि अईव सिप्पकलाकुसलो जाओ। सोमदत्तो जाओ जाओ पडिमाओ निम्मवेइ तासु तासु पिया कंपि भुल्लं दंसेइ, कया वि सिलाहं न कुणेइ। तओ सो सुहुमदिट्ठीए सुहुमसुहुमं सिप्पकिरियं कुणेऊण पियरं दंसेइ, पिया वि तत्थ वि कंपि खलणं दरिसेइ, 'तुमए सोहणयरं सिप्पं कयं' ति न कयाइ तं पसंसेइ। अपसंसमाणे पिउम्मि सो चिंतेइ– 'मम पिआ मज्झ कलं कहं न पसंसेज्जा ?' तओ एआरिसं उवायं कहेमि, जेण पियरो मे कलं पसंसेज्ज।

एगया तस्स पिआ कज्जप्पसंगेण गामंतरे गओ, तया सो सोमदत्तो सिरिगणेसस्स सुंदरयमं पडिमं काऊण, पडिमाए हिट्ठंमि गूढं नियनामंकियचिण्हं करिऊण, तं मुत्तिं नियमित्तद्दारेण भूमीए अंतो निक्खेवं कारेइ। कालंतरे गामंतराओ पिया समागओ। एगया तस्स मित्तो जणाणमग्गओ एवं कहेइ– 'अज्ज मम सुमिणो समागओ, तेण अमुगाए भूमीए गणेसस्स पहावसालिणी पडिमा अत्थि।' तया लोगेहिं सा पुढवी खणिआ, तीए पुहवीए गणेसस्स सुंदरयमा अणुवमा मुत्ती निग्गया। तद्दंसणत्थं बहवे लोगा समागया, तीए सिप्पकलं अईव पसंसिरे।

तया सो इंददत्तो वि सपुत्तो तत्थ समागओ। तं गणेसपडिमं दट्ठूणं पुत्तं कहेइ— "हे पुत्त ! एसच्चिअ सिप्पकला कहिज्जइ। केरिसी पडिमा निम्मविआ, इमाए निम्मावगो खलु धण्णयमो सलाहणिज्जो य अत्थि। पासेसु, कत्थ वि भुल्लं खुण्णं च अत्थि ? जइ तुम एआरिसीं पडिमं निम्मवेज्ज, तया ते सिप्पकलं पसंसेमि, नन्नहा।"

---

1. डॉ. राजाराम जैन द्वारा सम्पादित 'पाइयगज्जसंगहो' (प्राच्य भारती प्रकाशन, आरा) में प्रकाशित कथा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुत्तो वि कहेइ— "हे पियर ! एसा गणेसपडिमा मम कया। इमाए हिट्ठंमि गुत्तं मए नामंपि लिहिअमत्थि।" पिआवि लिहिअनामं वाइऊण खिज्जहियओ पुत्तं कहेइ— "हे पुत्त ! अज्जयणाओ तुं एरिसं सिप्पकलाजुत्तं सुंदरयमं पडिमं कया वि न करिस्ससि, जओ हं तव सिप्पकलासु भुल्लं दंसंतो, तया तुमं पि सोहणयरकज्जकरणतल्लिच्छो सण्हं सण्हं सिप्पं कुणंतो आसि, तेण तव सिप्पकलावि वड्ढंती हुवीअ। अहुणा 'मम सारिच्छो नन्नो' इह मंदूसाहेण तुम्ह एआरसी सिप्पकला न संभविहिइ।" एवं सो सरहस्सं पिउवयणं सोच्चा पाएसु पडिऊण पिउत्तो पसंसाकरावणरूवनिआवराहं खामेइ, परंतु सो सोमदत्तो तओ आरब्भ तारिसिं सिप्पकलं काउं असमत्थो जाओ।

उवएसो —

दिट्ठंतं सिप्पिपुत्तस्स नच्चा गुणगणप्पयं।
पुज्जाणं वयणं सोच्चा पडिऊलं न चिंतह॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ - 12

पुत्तेहिं पराभविअस्स पिउस्स कहा[1]

जाव दव्वं विइण्णं न पुत्ता ताव वसंवया।
पत्ते दव्वे य सच्छंदा हवंति दुक्खदायगा॥

कंमि नयरे एगवुड्ढस्स चत्तारि पुत्ता संति। सो थविरो सव्वे पुत्ते परिणाविऊण नियवित्तस्स चउब्भागं किच्चा पुत्ताणं अप्पियं। सो धम्माराहणतप्परो निच्चिंतो कालं गमेइ। कालंतरे ते पुत्ता इत्थीणं वेमणस्सभावेण भिन्नघरा संजाआ। वुड्ढस्स पइदिणं पइघरं भोयणाय वारगो निबद्धो। पढमदिणंमि जेट्ठस्स पुत्तस्स गेहे भोयणाय गओ। बीयदिणे बीयपुत्तस्स घरे जाव चउत्थदिणे कणिट्ठस्स पुत्तस्स घरे गओ। एवं तस्स सुहेण कालो गच्छइ।

कालंतरे थेराओ धणस्स अपत्तीए पुत्तवहूहिं सो थेरो अवमाणिज्जइ। पुत्तवहूओ कहिंति— "हे ससुर ! अहिलं दिणं घरंमि किं चिट्ठसु ? अम्हाणं मुहाइं पासिउं किं ठिओ सि ? थीणं समीवे वसणं पुरिसाणं न जुत्तं, तव लज्जावि न आगच्छेज्जा पुत्ताणं हट्टे गच्छज्जसु।" एवं पुत्तवहूहिं अवमाणिओ सो पुत्ताण हट्टे गच्छइ।

तया पुत्तावि कहिंति— "हे वुड्ढ ! किमत्थं एत्थ आगओ ? वुड्ढत्तणे घरे वसणमेव सेयं, तुम्ह दंता वि पडिआ, अक्खितेयं पि गयं, सरीरं वि कंपिरमत्थि, अत्थ ते किंपि पओयणं नत्थि, तम्हा घरे गच्छाहि।" एवं पुत्तेहिं तिरक्करिओ सो घरं गच्छेइ तत्थ पुत्तवहूओ वि तं तिरक्करंति। पुत्तपुत्ता वि तस्स थेरस्स कच्छुट्टियं निक्कासेइरे; कयावि मंसुं दाढियं च करिसिन्ति। एवं सव्वे विविहप्पगारेहिं तं वुड्ढं अवहसिंति। पुत्तवहूओ भोयणे वि रुक्खं अपक्कं च रोट्टगं दिंति। एवं पराभविज्जमाणो वुड्ढो चिंतेइ— 'कि करेमि, कहं जीवणं निव्वहिस्सं ?' एवं दुहुमणुभवंतो सो नियमित्तसुवण्णगारस्स समीवे गओ। अप्पणो पराभवदुहं तस्स कहेइ, नित्थरणुवायं च पुच्छइ।

---

1. डॉ. राजाराम जैन द्वारा सम्पादित 'पाइयगज्जसंगहो' (प्राच्य भारती प्रकाशन, आरा) में प्रकाशित कथा।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुवण्णगारो बोल्लेइ— "भो मित्त ! पुत्ताणे वीसासं करिऊण सव्वं धणमप्पिअं, तेण दुहिओ जाओ तत्थ किं चोज्जं ? सहत्थेण कम्मं कयं, तं अप्पणा भोत्तव्वं चिअ।" तह वि मित्तत्तेण सो एवं उवायं दंसेइ— "तुमए पुत्ताणं एवं कहिअव्वं— 'मम मित्तसुवण्णगारस्स गेहे रुप्पयदीणारभूसणेहिं भरिया एगा मंजूसा मए मुक्का अत्थि, अज्ज जाव तुम्हाणं न कहिअं, अहुणा जराजिण्णो हं, तेण सद्धम्मकम्मणा सत्तक्खेत्ताईसुं लच्छीए विणिओगं काऊण परलोगपाहेयं गिण्हिस्सं।' एवं कहिऊण पुत्तेहिं एसा मंजूसा रत्तीए गेहे आणावियव्वा। मंजूसाए मज्झे तं रुप्पगसयं मोइस्सं तं तु मज्झरत्तीए पुणो पुणो तुमए सयं च सहस्सं च रणरणयारपुव्वं गणेयव्वं, जेण पुत्ता मन्निस्संति— 'अज्जावि बहुधणं पिउणो समीवे अत्थि।' तओ धणासाए ते पुव्वमिव भत्तिं करिस्संते। पुत्तवहूओ वि तहेव सक्कारं काहिंति। तुमए सव्वेसिं कहियव्वं— 'इमीए मंजूसाए बहुधणमत्थि। पुत्तपुत्तवहूणं नामाइं लिहिऊण ठवियमत्थि। तं तु मम मरणंते तुम्हेहिं नियनियनाम-वारेण गहिअव्वं।' धम्मकरणत्थं पुत्तेहिंतो धणं गिण्हिऊण सद्धम्मकरणे वावरियव्वं। मम रुप्पगसयं पि तुमए न विस्सारियव्वं, एयं अवसरे दायव्वं।"

सो थेरो मित्तस्स बुद्धीए तुट्ठो गेहे गच्चा रत्तीए पुत्तेहिं मंजूसं आणाविऊण रत्तीए तं रुप्पगसयं सयं-सहस्स-दससहस्साइगुणणेण तं चिय गणिंति। पुत्ता वि विआरिंति— पिउस्स पासे बहुधणमत्थि, ते वहूणं पि कहिंति। सव्वे ते थेरं बहुं सक्कारिंति सम्माणिंति य अईवनिब्बंधेण तं पुत्तवहूआ वि अहमहमिगयाए भोयणाय निंति, साउं सरसं भोयणं दिंति, तस्स वत्थाइं पि सएव पक्खालिंति, परिहाणाय धुविआइं वत्थाइं अप्पिंति। एवं वुड्ढस्स सुहेण कालो गच्छइ।

एगया आसन्नमरणो सो पुत्ताणं कहेइ— "मज्झ धम्मकरणेच्छा वट्टइ, तेण सत्तखेत्तेसुं किंचि वि धणं दाउमिच्छामि।" पुत्तावि मंजूसा-गयधणासाए अप्पिंति। सो वुड्ढो जिण्णमंदिरुवस्सयसुपत्ताईसुं जहसत्तीए देइ। अप्पणो परममित्तसुवण्णगारस्स वि नियहत्थेण रुप्पयसयं पच्चप्पेइ, एवं सद्धम्मकम्ममि धणव्वयं किच्चा, मरणकालंमि पुत्ताणं पुत्तवहूणं च बोल्लाविऊण कहिअं— "इमीए मंजूसाए सव्वेसिं नामग्गहणपुव्वयं धणं मुत्तमत्थि। तं तु मम मरणकिच्चं काऊण पच्छा जहनामं तुम्हेहिं गहिअव्वं" ति कहिऊण समाहिणा सो वुड्ढो कालं पत्तो। पुत्ता वि तस्स मच्चुकिच्चं किच्चा नाइजणं पि जेमाविऊण बहुधणासाइ जया सव्वे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मिलिऊण मंजूसं उग्घाडिंति तया तम्मज्झंमि नियनियनामजुत्तपत्तेहिं वेढिए पाहाणखंडे त च रुप्पगसयं पासित्ता अहो वुड्ढेण अम्हे वंचिआ वंचिअ त्ति, किल अम्हाणं पिउभत्तिपरंमुहाणं अविणयस्स फलं संपत्तं। एवं सव्वे ते दुहिणो जाआ।

उवएसो —

पुत्तेहिं पत्तवित्तेहिं पिअरस्स पराभवं।
सोच्चा तहा पयट्टेज्जा सुहं वुड्ढत्तणे वसे॥

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्याकरणिक विश्लेषण
एवं
शब्दार्थ
(पद्य भाग)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संकेत सूची

अक – अकर्मक क्रिया
अनि – अनियमित
आज्ञा – आज्ञा
क्रिविअ – क्रिया विशेषण अव्यय
प्रे – प्रेरणार्थक क्रिया
भवि – भविष्यत्काल
भाव – भाववाच्य
भूकृ – भूतकालिक कृदन्त
व – वर्तमानकाल
वकृ – वर्तमान कृदन्त
वि – विशेषण
विधि – विधि
विधिकृ – विधिकृदन्त
स – सर्वनाम
संकृ – सम्बन्धक कृदन्त
सक – सकर्मक क्रिया
सवि – सर्वनाम विशेषण
स्त्री – स्त्रीलिंग
हेकृ – हेत्वर्थक कृदन्त
● ( ) – इस प्रकार के कोष्ठक में शब्द रखा गया है।
● [( )+( )+( ).....] इस प्रकार के कोष्ठक के अन्दर (+) चिह्न शब्दों में सन्धि का द्योतक है।

●[[( ) – ( ) – ( )] वि]
जहाँ समस्तपद विशेषण का कार्य करता है वहाँ इस प्रकार के कोष्ठक का प्रयोग किया गया है।

●जहाँ कोष्ठक के बाहर केवल संख्या (जैसे 1/1, 2/1... आदि) ही लिखी है वहाँ उस कोष्ठक के अन्दर का शब्द **'संज्ञा'** है।

●जहाँ कर्मवाच्य, कृदन्त आदि अपभ्रंश के नियमानुसार नहीं बने हैं वहाँ कोष्ठक के बाहर **'अनि'** भी लिखा गया है।

1/1 अक या सक – उत्तम पुरुष/एकवचन
1/2 अक या सक – उत्तम पुरुष/बहुवचन
2/1 अक या सक – मध्यम पुरुष/एकवचन
2/2 अक या सक – मध्यम पुरुष/बहुवचन
3/1 अक या सक – अन्य पुरुष/एकवचन
3/2 अक या सक – अन्य पुरुष/बहुवचन
1/1 – प्रथमा/एकवचन
1/2 – प्रथमा/बहुवचन
2/1 – द्वितीया/एकवचन
2/2 – द्वितीया/बहुवचन
3/1 – तृतीया/एकवचन
3/2 – तृतीया/बहुवचन
4/1 – चतुर्थी/एकवचन
4/2 – चतुर्थी/बहुवचन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

यहाँ अन्दर के कोष्ठकों में मूल शब्द ही रखे गए हैं।

●[( )–( ) ( ).....]

इस प्रकार के कोष्ठक के अन्दर '–' चिह्न समास का द्योतक है।

5/1 – पंचमी/एकवचन

5/2 – पंचमी/बहुवचन

6/1 – षष्ठी/एकवचन

6/2 – षष्ठी/बहुवचन

7/1 – सप्तमी/एकवचन

7/2 – सप्तमी/बहुवचन

8/1 – संबोधन/एकवचन

8/2 – संबोधन/बहुवचन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ - 1
वज्जालग्ग

1.

तं	(त) 2/1 सवि	= उस
किं पि	अव्यय	= कुछ भी
साहसं	(साहस) 2/1	= साहस (कार्य) को
साहसेण	(साहस) 3/1	= साहस से
साहंति	(साह) व 3/2 सक	= सिद्ध करते हैं
साहससहावा	[(साहस)-(सहाव) 1/2]	= साहस, स्वभाव
जं	(ज) 2/1 स	= जिस (कार्य) को
भाविऊण	(भाव) संकृ	= विचारकर
दिव्वो	(दिव्व) 1/1	= दैव
परंमुहो	(परंमुह) 1/1	= उदासीन
धुणइ	(धुण) व 3/1 सक	= हिलाता है
नियसीसं	[(निय) वि–(सीस) 2/1]	= निज शीश को

2.

जह	अव्यय	= जैसे
जह	अव्यय	= जैसे
न	अव्यय	= नहीं
समप्पइ	(समप्पइ) व कर्म 3/1 सक अनि	= पूरा किया जाता है
विहिवसेण	[(विहि)–(वस) 3/1]	= विधि की अधीनता से
विहडंतकज्ज-	[(विहड) वकृ–(कज्ज)–	= बिगड़ता हुआ होने के
परिणामो	(परिणाम) 1/1]	कारण, कार्य का परिणाम
तह	अव्यय	= वैसे
तह	अव्यय	= वैसे
धीराण	(धीर) 6/2 वि	= धीरों के
मणे	(मण) 7/1	= मन में
वड्ढइ	(वड्ढ) व 3/1 अक	= बढ़ता है

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बिउणो	(बिउण) 1/1 वि	= दुगना
समुच्छाहो	[(सम)+(उच्छाहो)]	
	[(सम) वि–(उच्छाह)1/1]	= अचल उत्साह

3.

फलसंपत्तीइ	[(फल)–(संपत्ति) 7/1]	= फलों की प्राप्ति होने पर
समोणयाइं	(समोणय) 1/2 वि	= बहुत झुके हुए
तुंगाइं	(तुंग) 1/2 वि	= ऊँचे
फलविपत्तीए	[(फल)–(विपत्ति) 7/1]	= फलों के नाश होने पर
हिययाइं	(हिययय) 1/2	= हृदय
सुपुरिसाणं	(सुपुरिस) 6/2	= सज्जन पुरुषों के
महातरूणं	[(महा)-(तरु) 6/2]	= महावृक्षों के
व	अव्यय	= की तरह
सिहराइं	(सिहर) 1/2	= शिखरों

4.

हियए	(हियअ) 7/1	= मन में
जाओ	(जा[1]) भूक 1/1	= उत्पन्न हुआ है
तत्थेव	(तत्थ+एव) अव्यय	= वहाँ, ही
वड्ढिओ	(वड्ढ) भूक 1/1	= बढ़ाया गया
नेय	अव्यय	= कभी नहीं
पयडिओ	(पयड) भूक 1/1	= प्रकट किया गया
लोए	(लोअ) 7/1	= लोक में
ववसायपायवो	[(ववसाय)–(पायव) 1/1]	= संकल्परूपी वृक्ष
सुपुरिसाण	(सुपुरिस) 6/2	= सज्जन पुरुषों का
लक्खिज्जइ	(लक्ख) व कर्म 3/1 सक	= पहचाना जाता है
फलेहिं	(फल) 3/2	= फलों द्वारा

---

1. अकर्मक धातुओं से बने भूतकालिक कृदन्त कर्तृवाच्य में भी प्रयुक्त होते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

5.

ववसायफलं	[(ववसाय) – (फल) 1/1]	= संकल्प का परिणाम
विहवो	(विहव) 1/1	= सम्पत्ति
विहवस्स	(विहव) 6/1	= सम्पत्ति का
य	अव्यय	= और
विहलजण-समुद्धरणं	[(विहल) वि–(जण)–(समुद्धरण)1/1]	= व्याकुल जनों का उद्धार
विहलुद्धरणेण	[(विहल)+(उद्धरणेण)]	
	[(विहल) वि– (उद्धरण) 3/1]	= व्याकुलों के उद्धार से
जसो	(जस) 1/1	= यश
जसेण	(जस) 3/1	= यश से
भण	(भण) विधि 2/1 सक	= कहो
किं	(किं) 1/1 सवि	= क्या
न	अव्यय	= नहीं
पज्जत्तं	(पज्जत्त) भूकृ 1/1 अनि	= प्राप्त किया हुआ

6.

आढत्ता	(आढत्त) भूकृ 1/2 अनि	= शुरू किये हुए
सप्पुरिसेहि	(सप्पुरिस) 3/2	= सज्जन आत्माओं द्वारा
तुंगववसाय-दिन्नहियएहिं	[(तुंग)–(ववसाय)–(दिन्न) वि–(हियअ) 3/2]	= उच्च, कर्म में, स्थापित, हृदय से
कज्जारंभा	[(कज्ज)+(आरंभा)]	
	[(कज्ज)–(आरंभ) 1/2]	= कार्यों के लिए प्रयत्न
होहिंति	(हो) भवि 3/2	= होंगे
निप्फला	(निप्फल) 1/2 वि	= निष्फल
कह	अव्यय	= कैसे
चिरं कालं	(क्रिविअ)	= दीर्घ काल तक

7.

विहवक्खए	[(विहव)–(क्खअ) 7/1]	= वैभव के क्षय होने पर
वि	अव्यय	= भी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दाणं	(दाण) 1/1	= उदारता
माणं	(माण) 1/1	= आत्मसम्मान
वसणे	(वसण) 7/1	= विपत्ति में
वि	अव्यय	= भी
धीरिमा	(धीरिमा) 1/1	= धैर्य
मरणे	(मरण) 7/1	= मरण में
कज्जसए	[(कज्ज)–(सअ) 7/1]	= सैकड़ों प्रयोजनों में
वि	अव्यय	= भी
अमोहो	(अमोह) 1/1 वि	= अनासक्त
पसाहणं	(पसाहण) 1/1	= भूषण
धीरपुरिसाणं	[(धीर) वि–(पुरिस) 6/2]	= धीर पुरुषों के

8.

दारिद्दय	(दारिद्द) 8/1 स्वार्थिक 'य' प्रत्यय	= हे निर्धनता
तुज्झ	(तुम्ह) 6/1 स	= तुम्हारे
गुणा	(गुण) 1/2	= गुण
गोविज्जंता	(गोव) वकृ कर्म 1/2	= छुपाये जाते हुए
वि	अव्यय	= भी
धीरपुरिसेहिं	[(धीर) वि–(पुरिस) 3/2]	= धीर पुरुषों के द्वारा
पाहुणएसु	(पाहुणअ) 7/2	= अतिथियों में
छणेसु	(छण) 7/2	= उत्सवों पर
य[1]	अव्यय	= और
वसणेसु	(वसण) 7/2	= कष्टों के होने पर
पायडा	(पायड) 1/2	= प्रकट
हुंति	(हु) व 3/2 अक	= होते हैं

9.

दारिद्दय	(दारिद्द) 8/1 स्वार्थिक 'य' प्रत्यय	= हे निर्धनता
तुज्झ	(तुम्ह) 4/1 स	= तुम्हारे लिए

---

1. दो शब्दों को जोड़ने के लिए कभी-कभी 'और' अर्थ का व्यक्त करने वाले अव्यय दो बार प्रयोग किए जाते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नमो[1]	अव्यय	= नमस्कार
जस्स	(ज) 6/1 स	= जिसके
पसाएण	(पसाअ) 3/1	= प्रसाद से
एरिसी	(एरिस (पु) →एरिसी (स्त्री)) 1/1 वि	= ऐसी
रिद्धी	(रिद्धि) 1/1	= ऋद्धि
पेच्छामि	(पेच्छ) व 1/1 सक	= देखता हूँ
सयललोए	[(सयल) वि–(लोअ) 2/2]	= सब लोगों को
ते	(त) 1/2 सवि	= वे
मह[2]	(अम्ह) 6/1	= मुझे
लोया	(लोय) 1/2	= लोग
न	अव्यय	= नहीं
पेच्छंति	(पेच्छ) व 3/2 सक	= देखते हैं
10.		
जे	(ज़) 1/2 स	= जो
जे	(ज) 1/2 स	= जो
गुणिणो	(गुणि) 1/2 वि	= गुणी
जे	(ज) 1/2 स	= जो
जे	(ज) 1/2 स	= जो
वि	अव्यय	= भी
माणिणो	(माणि) 1/2 वि	= आत्म-सम्मानी
जे	(ज) 1/2 स	= जिन्होंने
वियड्ढसंमाणा	[(वियड्ढ) वि–(संमाण) 1/2]	= विद्वानों में सम्मान
दालिद्द	(दालिद्द) 8/1	= निर्धनता
रे	अव्यय	= हे
वियक्खण	(वियक्खण) 8/1 वि	= निपुण

1. 'नमो' के योग में चतुर्थी विभक्ति होती है।
2. कभी-कभी षष्ठी विभक्ति का प्रयोग द्वितीया विभक्ति के स्थान पर पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-134)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ताण	(त) 4/2 स	= उनके लिए
तुमं	(तुम्ह) 1/1 स	= तुम
साणुराओ	[(स+अणुराओ) (स-अणुराअ) 1/1 वि]	= अनुराग सहित
सि	(अस) व 2/1 अक	= होती हो

11.

दीसंति	(दीसंति) व कर्म 3/2 सक अनि	= देखे जाते हैं
जोयसिद्धा	[(जोय)–(सिद्ध) भूकृ 1/2 अनि]	=योग-सिद्ध
अंजणसिद्धा	[(अंजण)–(सिद्ध) भूकृ 1/2 अनि]	= अंजण-सिद्ध
वि	अव्यय	= भी
के	(क) 1/2 स	= कितने
वि	अव्यय	= ही
दीसंति	(दीसंति) व कर्म 3/2 सक अनि	= देखे जाते हैं
दारिद्दजोयसिद्धं	[(दारिद्द)–(जोय)–(सिद्ध) भूकृ 2/1 अनि]	= दारिद्र-योग-सिद्ध को
मं	(अम्ह) 2/1 स	= मुझ
ते	(त) 1/2 स	= वे
लोया	(लोय) 1/2	= मनुष्य
न	अव्यय	= नहीं
पेच्छंति	(पेच्छ) व 3/2 सक	= देखते हैं

12.

संकुयइ	(संकुय) व 3/1 अक	= सिकुड़ जाता है
संकुयंते	(संकुय) वकृ 7/1	= अस्त होते हुए
वियसइ	(वियस) व 3/1 अक	= फैल जाता है
वियसंतयम्मि	(वियस) वकृ 'य' स्वार्थिक 7/1	= उदय होते हुए
सूरम्मि	(सूर) 7/1	= सूर्य में
सिसिरे	(सिसिर) 7/1	= सर्दी में
रोरकुडुंबं	[(रोर) वि–(कुडुंब) 1/1]	= गरीब कुटुम्ब
पंकयलीलं	[(पंकय)–(लीला) 2/1]	= कमल की लीला को
समुव्वहइ	(समुव्वह) व 3/1 सक	= धारण करता है

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

13.

ओलग्गिओ	(ओलग्ग) भूक 1/1	= अनुलग्न
सि	(अस) व 2/1 अक	= हो
धम्मम्मि	(धम्म) 7/1	= धर्म में
होज्ज	(हो) विधि 2/1 अक	= रहो
एण्हिं	अव्यय	= अब
नरिंद	(नरिंद) 8/1	= हे राजा
वच्चामो	(वच्च) व 1/2 सक	= जाते हैं
आलिहियकुंजरस्स	[(आलिहिय) भूक–(कुंजर) 6/1]	= चित्रित हाथी के
व	अव्यय	= जैसे
तुह	(तुम्ह) 6/1 स	= तुम्हारी
पहु	(पहु) 8/1	= हे प्रभो
दाणं	(दाण) 1/1	= उदारता
चिय	अव्यय	= कभी
न	अव्यय	= नहीं
दिट्ठं	(दिट्ठ) भूक 1/1 अनि	= देखी गई

14.

भग्गे[1]	(भग्ग) भूक 7/1 अनि	= खण्डित होने पर
वि	अव्यय	= भी
बले[1]	(बल) 7/1	= युद्ध शक्ति के
वलिए[1]	(वल) भूक 7/1	= घिरे हुए होने पर
वि	अव्यय	= भी
साहणे[1]	(साहण) 7/1	= सेना के
सामिए[1]	(सामिअ) 7/1	= स्वामी के
निरुच्छाहे[1]	(निरुच्छाह) 7/1 वि	= उत्साहरहित होने पर

---

1. यदि एक क्रिया के बाद दूसरी क्रिया हो तो पहली क्रिया में कृदन्त का प्रयोग होता है और यदि कर्तृवाच्य है तो कर्ता और कृदन्त में सप्तमी विभक्ति होगी, यदि कर्मवाच्य है तो कर्म और कृदन्त में सप्तमी विभक्ति होगी, कर्त्ता में तृतीया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नियभुय-विक्कमसारा	[(निय) वि–(भुय)–(विक्कम)–(सार) 5/1]	= निज भुजाओं के पराक्रम बल से
थक्कंति	(थक्क) व 3/2 अक	= स्थिर रहते हैं
कुलुग्गया	[(कुल)+(उग्गया)] [(कुल)–(उग्गय) 1/2 वि]	= उच्च कुलों में उत्पन्न
सुहडा	(सुहड) 1/2	= योद्धा
15.		
वियलइ	(वियल) व 3/1 अक	= क्षीण होता है
धणं	(धण) 1/1	= धन
न	अव्यय	= नहीं
माणं	(माण) 1/1	= आत्म-सम्मान
झिज्जइ	(झिज्ज) व 3/1 अक	= क्षीण होता है
अंगं	(अंग) 1/1	= शरीर
न	अव्यय	= नहीं
झिज्जइ	(झिज्ज) व 3/1 अक	= क्षीण होता है
पयावो	(पयाव) 1/1	= प्रताप
रूवं	(रूव) 1/1	= रूप
चलइ	(चल) व 3/1 अक	= नष्ट होता है
न	अव्यय	= नहीं
फुरणं	(फुरण) 1/1	= स्फूर्ति
सिविणे	(सिविण) 7/1	= स्वप्न में
वि	अव्यय	= भी
मणंसिसत्थाणं	[(मणंसि) वि–(सत्थ) 6/2]	= दृढ़ संकल्प वाले दल का
16.		
हंसो	(हंस) 1/1	= हंस
सि	(अस) व 2/1 अक	= हो
महासरमंडणो	[(महासर)– (मंडण) 1/1]	= महासागर के आभूषण
सि	(अस) व 2/1 अक	= हो
धवलो	(धवल) 1/1	= विशुद्ध

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सि	(अस) व 2/1 अक	= हो
धवल	(धवल) 8/1	= हे धवल
किं	(किं) 1/1 सवि	= क्या
तुज्झ	(तुम्ह) 6/1 स	= तुम्हारा
खलवायसाण	[(खल) वि–(वायस) 6/2]	= दुष्ट कौओं के
मज्झे	(मज्झ) 7/1	= मध्य में
ता	अव्यय	= तो
हंसय	(हंस) 8/1 'य' स्वार्थिक	= हे हंस
कत्थ	अव्यय	= कैसे
पडिओ'	(पड) भूकृ 1/1	= फँसे हुए
सि	(अस) व 2/1 अक	= हो

17.

हंसो	(हंस) 1/1	= हंस
मसाणमज्झे	[(मसाण)–(मज्झ) 7/1]	= मसाण के मध्य में
काओ	(काअ) 1/1	= कौआ
जइ	अव्यय	= यदि
वसइ	(वस) व 3/1 अक	= रहता है
पंकयवणम्मि	[(पंकय)– (वण) 7/1]	= कमल-समूह में
तह वि	अव्यय	= तो भी
हु	अव्यय	= निश्चय ही
हंसो	(हंस) 1/1	= हंस
हंसो	(हंस) 1/1	= हंस
काओ	(काअ) 1/1	= कौआ
काओ	(काअ) 1/1	= कौआ
च्चिय	अव्यय	= ही
वराओ	(वराअ) 1/1 वि	= बेचारा

अकर्मक क्रियाओं से बना भूकृ कर्तृवाच्य में भी प्रयुक्त होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

18.

बे	(बे) 1/2 वि	= दोनों
वि	अव्यय	= ही
सपक्खा	(सपक्ख) 1/2 वि	= पंखसहित
तह	अव्यय	= उसी तरह
बे	(बे) 1/2 वि	= दोनों
वि	अव्यय	= ही
धवलया	(धवल) 1/2 'य' स्वार्थिक वि	= धवल
वे	(वे) 1/2 वि	= दोनों
वि	अव्यय	= ही
सरवरणिवासा	[(सरवर)–(णिवास) 1/2]	= तालाब में निवास
तह वि	अव्यय	= तो भी
हु	अव्यय	= निश्चय ही
हंसबयाणं	[(हंस)–(बय) 6/2]	= हंस और बतख का
जाणिज्जइ	(जाण) व कर्म 3/1 सक	= समझा जाता है
अंतरं	(अंतर) 1/1	= भेद
गरुयं	(गरुय) 1/1 वि	= महान

19.

एक्केण	(एक्क) 3/1 वि	= एक (के द्वारा)
य	अव्यय	= ही
पासपरिट्ठिएण	[(पास) –(परिट्ठिअ) 3/1 वि]	= किनारे पर स्थित
हंसेण	(हंस) 3/1	= हंस के द्वारा
होइ	(हो) व 3/1 अक	= होती है
जा	(जा) 1/1 सवि	= जो
सोहा	(सोहा) 1/1	= शोभा
तं	(ता) 2/1 स	= उसे
सरवरो	(सरवर) 1/1	= तालाब
न	अव्यय	= नहीं
पावइ	(पाव) व 3/1 सक	= प्राप्त करता है

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बहुएहि	(बहुअ) 3/2 वि	= बहुत
वि	अव्यय	= भी
ढिंकसत्थेहिं	[(ढिंक)–(सत्थ) 3/2]	= पक्षी-समूहों द्वारा
20.		
माणससररहियाणं	[(माणससर)–(रह) भूक 4/2]	= मानसरोवर के बिना
जह	अव्यय	= जैसे
न	अव्यय	= नहीं
सुहं	(सुह) 1/1	= सुख
होइ	(हो) व 3/1 अक	= होता
रायहंसाणं	(रायहंस) 4/2	= राजहंसों के लिए
तह	अव्यय	= वैसे ही
तस्स	(त) 6/1 स	= उसके
वि	अव्यय	= भी
तेहि	(त) 3/2 स	= उनके
विणा[1]	अव्यय	= बिना
तीरुच्छंगा	[(तीर)+(उच्छंगा)] [(तीर) –(उच्छंग) 1/2]	= तट प्रदेश
न	अव्यय	= नहीं
सोहंति	(सोह) व 3/2 अक	= शोभते हैं
21.		
वच्चिहिसि	(वच्च) भवि 2/1 सक	= जाओगे
तुमं	(तुम्ह) 1/1 स	= तुम
पाविहिसि	(पाव) भवि 2/1 सक	= पाओगे
सरवरं	[(सर)–(वर) 2/1 वि]	= उत्तम तालाब
रायहंस	(रायहंस) 8/1	= हे राजहंस
किं	(किं) 1/1 सवि	= क्या
चोज्जं	(चोज्ज) 1/1	= आश्चर्य

1. 'बिना' के योग में तृतीया, द्वितीया या पंचमी विभक्ति होती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

माणस-सरसारिक्खं	[(माणससर)–(सारिक्ख) 1/1 वि]	= मानसरोवर के समान
पुहविं[1]	(पुहवि) 2/1	= पृथ्वी पर
भमंतो	(भम) वकृ 1/1	= भ्रमण करते हुए
न	अव्यय	= नहीं
पाविहिसि	(पाव) भवि 2/1 सक	= पाओगे

22.

सव्वायरेण	[(सव्व)+(आयरेण)] [(सव्व) वि–(आयरेण) क्रिविअ = आदरपूर्वक]	= पूर्ण आदर से
रक्खह	(रक्ख) विधि 2/2 सक	= रक्षा करो
तं	(त) 2/1 सवि	= उस
पुरिसं	(पुरिस) 2/1	= पुरुष की
जत्थ	अव्यय	= जहाँ
जयसिरी	(जयसिरि) 1/1	= जयलक्ष्मी
वसइ	(वस) व 3/1 अक	= रहती है
अत्थमिय[2]	(अत्थम) भूकृ 7/1	= अस्त होने पर
चंदबिंबे	[(चंद)–(बिंब) 7/1]	= चन्द्र बिम्ब के
ताराहि	(तारा) 3/2	= तारों द्वारा
न	अव्यय	= नहीं
कीरए	(कीरए) व कर्म 3/1 सक अनि	= किया जाता है
जोण्हा	(जोण्हा) 1/1	= प्रकाश

23.

जइ	अव्यय	= यदि
चंदो	(चंद) 1/1	= चन्द्रमा
किं	(किं) 1/1 सवि	= क्या

---

1. 'गति' अर्थ के साथ द्वितीया विभक्ति का प्रयोग होता है।
2. मूल शब्द (किसी भी कारक के लिए मूल शब्द काम में लाया जा सकता है : वज्जालग्गं पृष्ठ 459 गाथा 264)।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बहुतारएहि	[(बहु)–(तारअ) 3/2]	= असंख्य तारों से
बहुएहि	(बहुअ) 3/2	= असंख्य
किं	(किं) 1/1 सवि	= क्या
च	अव्यय	= और
तेण[1]	(त) 3/1 स	= उसके
विणा[1]	अव्यय	= बिना
जस्स	(ज) 6/1 स	= जिसका
पयासो	(पयास) 1/1	= प्रकाश
लोए	(लोअ) 7/1	= लोक में
धवलेइ	(धवल) व 3/1 सक	= सफेद करता है
महामहीवट्टं	[(महा) वि–(महीवट्ट) 2/1]	= विस्तृत भूमितल को

24.

चंदस्स	(चंद) 6/1	= चन्द्रमा का
खओ	(खअ) 1/1	= क्षय
न	अव्यय	= नहीं
हु	अव्यय	= किन्तु
तारयाण	(तारय) 6/2	= तारों का
रिद्धी	(रिद्धि) 1/1	= वृद्धि
वि	अव्यय	= भी
तस्स	(त) 6/1 स	= उसकी
ण	अव्यय	= नहीं
हु	अव्यय	= किन्तु
ताणं	(त) 6/2 स	= उनकी
गरुयाण	(गरुय) 6/2 वि	= महान का
चडणपडणं	[(चडण)–(पडण) 1/1]	= चढ़ना, गिरना
इयरा	(इयर) 1/2 वि	= दूसरे
उण	अव्यय	= परन्तु

---

1. 'बिना' के योग में तृतीया, द्वितीया या पंचमी विभक्ति होती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

निच्चपडिया	[(निच्च) अ = हमेशा– (पड) भूकृ 1/2]	= हमेशा, गिरे हुए
य्	अव्यय	= ही
25.		
न	अव्यय	= नहीं
हु	अव्यय	= पादपूर्ति
कस्स	(क) 4/1 सवि	= किसी के लिए
वि	अव्यय	= भी
देंति	(दा) व 3/2 सक	= देते हैं
धणं	(धण) 2/1	= धन
अन्नं	(अन्न) 2/1 वि	= दूसरे को
देंतं	(दा) वकृ 2/1	= देते हुए
पि	अव्यय	= भी
तह	अव्यय	= तथा
निवारंति	(निवार) व 3/2 सक	= रोकते हैं
अत्था	(अत्थ) 1/2	=रुपये-पैसे
किं	अव्यय	= क्या
किविणत्था	[(किविण) वि–(त्थ) 1/2 वि]	= कृपण-स्थित
सत्थावत्था	[(सत्थ)+(अवत्था)] [(स-त्थ) वि–(अवत्था)] 1/1]	=अपने आप में स्थित दशा
सुयंति	(सुय) व 3/2 अक	= सोते हैं
व्व	अव्यय	= की तरह
26.		
निहणंति	(निहण) व 3/2 सक	= गाड़ते हैं
धणं	(धण) 2/1	= धन को
धरणीयलम्मि	(धरणीयल) 7/1	= भूमितल में
इय	अव्यय	= इस तरह
जाणिऊण	(जाण) संकृ	= सोचकर
किविणजणा	[(किविण) वि–(जण) 1/2]	= कृपण लोग

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पायाले	(पायाल) 7/1	= पाताल में
गंतव्वं	(गंतव्व) विधिकृ 1/1 अनि	= पहुँचे जाने की सम्भावना
ता	अव्यय	= उस (इस) कारण से
गच्छउ	(गच्छ) विधि 3/1 सक	= जावे (जाना चाहिए)
अग्गठाणं	[(अग्ग)–(ठाण) 2/1]	= आगे स्थान को
पि	अव्यय	= भी

27.

करिणो	(करि) 6/1	= हाथी के
हरिणहरविया-रियस्स	[(हरि)–(णहर)–(वियार) भूकृ 6/1]	= सिंह के नखों द्वारा चीरे हुए
दीसंति	(दीसंति) व कर्म 3/2 सक अनि	= देखे जाते हैं
मोत्तिया	(मोत्तिय) 1/2	= मोती
कुंभे	(कुंभ) 7/1	= गण्डस्थल पर
किविणाण	(किविण) 6/2 वि	= कृपणों के
नवरि	अव्यय	= केवल
मरणे	(मरण) 7/1	= मरने पर
पयड	(पयड) 1/2 वि आगे संयुक्त अक्षर (च्चिय) आने से दीर्घ स्वर ह्रस्व स्वर हुआ है।	= प्रकट
च्चिय	अव्यय	= ही
हुंति	(हु) व 3/2 अक	= होते हैं
भंडारा	(भंडार) 1/2	= भण्डार

28.

देमि	(दा) व 1/1 सक	= देता हूँ
न	अव्यय	= नहीं
कस्स	(क) 4/1 सवि	= किसी के लिए
वि	अव्यय	= भी
जंपइ	(जंप) व 3/1 सक	= कहता है
उद्दारजणस्स	[(उद्दार) वि–(जण) 4/1]	= श्रेष्ठजन के लिए
विविहरयणाइं	[(विविह) वि–(रयण) 2/2]	= विविध रत्नों को

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चाएण[1]	(चाअ) 3/1	= त्याग के
विणा[1]	अव्यय	= बिना
वि	अव्यय	= ही
नरो	(नर) 1/1	= मनुष्य
पुणो वि	अव्यय	= फिर भी
लच्छीइ	(लच्छी) 3/1	= लक्ष्मी के द्वारा
पम्मुक्को	(पम्मुक्क) भूकृ 1/1 अनि	= परित्यक्त

29.

जीयं	(जीय) 1/1	= जीवन
जलबिंदुसमं	[(जल)–(बिंदु)–(सम) 1/1 वि]	= जल-बिन्दु के समान
उप्पज्जइ	(उप्पज्ज) व 3/1 अक	= उत्पन्न होता है
जोव्वणं	(जोव्वण) 1/1	= यौवन
सह[2]	अव्यय	= साथ
जराए	(जरा) 3/1	= बुढ़ापे के
दियहा	(दियह) 1/2	= दिवस
दियहेहि	(दियह) 3/2	= दिवसों के
समा[2]	(सम) 1/2 वि	= समान
न	अव्यय	= नहीं
हुंति	(हु) व 3/2 अक	= होते हैं
किं	अव्यय	= क्यों
निट्ठुरो	(निट्ठुर) 1/1 वि	= निष्ठुर
लोओ	(लोअ) 1/1	= मनुष्य

30.

विहडंति	(विहड) व 3/2 अक	= अलग होते हैं
सुया	(सुय) 1/2	= पुत्र
विहडंति	(विहड) व 3/2 अक	= अलग होते हैं

---

1. 'बिना' के योग में तृतीया, द्वितीया या पंचमी विभक्ति होती है।
2. 'सह', 'सम' के योग में तृतीया विभक्ति होती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बंधवा	(बंधव) 1/2	= बन्धु
विहडेइ	(विहड) व 3/1 अक	= अलग होता है
संचिओ	(संचिअ) भूक 1/1 अनि	= संचित
अत्थो	(अत्थ) 1/1	= अर्थ
एक्कं	(एक्क) 1/1 वि	= एक
नवरि	अव्यय	= केवल
न	अव्यय	= नहीं
विहडइ	(विहड) व 3/1 अक	= अलग होता है
नरस्स	(नर) 6/1	= मनुष्य का
पुव्वक्कयं	[(पुव्व) क्रिविअ = पूर्व में–(क्कय) भूक 1/1 अनि]	= पूर्व में, किया हुआ
कम्मं	(कम्म) 1/1	= कर्म

31.

रायंगणम्मि	[(राय)+(अंगणम्मि)] [(राय)–(अंगण) 7/1]	= राजा के आँगन में
परिसंठियस्स	(परिसंठिय) भूक 6/1 अनि	= स्थित
जह	अव्यय	= जिस तरह
कुंजरस्स	(कुंजर) 6/1	= हाथी की
माहप्पं	(माहप्प) 1/1	= महिमा
विंझसिहरम्मि	[(विंझ)–(सिहर) 7/1]	= विंध्य पर्वत के शिखर पर
न	अव्यय	= नहीं
तहा	अव्यय	= उसी तरह
ठाणेसु	(ठाण) 7/2	= स्थानों पर
गुणा	(गुण) 1/2	= गुण
विसट्टंति	(विसट्ट) व 3/1 अक	= खिलते हैं

32.

ठाणं	(ठाण) 2/1	= स्थान को
न	अव्यय	= नहीं
मुयइ	(मुय) व 3/1 सक	= छोड़ता है

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

धीरो	(धीर) 1/1	= धीर पुरुष
ठक्कुरसंघस्स	[(ठक्कुर)-(संघ) 6/1]	= मुखियाओं के समूह का
दुट्ठवग्गस्स	[(दुट्ठ) वि–(वग्ग) 6/1]	= दुष्ट समूह का
ठंतं	(ठा) वकृ 2/1 'ठा' के आगे संयुक्त अक्षर (न्त) के आने से दीर्घ स्वर ह्रस्व स्वर हुआ है।	= स्थिर रहता हुआ
पि	अव्यय	= किन्तु
देइ	(दा) व 3/1 सक	= करता है
जुज्झं	(जुज्झ) 2/1	= विरोध
ठाणे	(ठाण) 7/1	= स्थान पर
ठाणे	(ठाण) 7/1	= स्थान पर
जसं	(जस) 2/1	= यश को
लहइ	(लह) व 3/1 सक	= प्राप्त करता है

33.

जइ	अव्यय	= यदि
नत्थि	अव्यय	= नहीं
गुणा	(गुण) 1/2 वि	= गुण
ता	अव्यय	= तो
किं	(किं) 1/1 सवि	= क्या
कुलेण	(कुल) 3/1	= उच्च कुल से
गुणिणो	(गुणी) 4/1 वि	= गुणी के लिए
कुलेण	(कुल) 3/1	= उच्च कुल से
न	अव्यय	= नहीं
हु	अव्यय	= भी
कज्जं	(कज्ज) 1/1	= प्रयोजन
कुलमकलंक[1]	[(कुलं)+(अकलंकं)] कुलं[1] (कुल) 2/1 अकलंकं[1] (अकलंक) 2/1 वि	= कुल पर , कलंक रहित

---

1. कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-137)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गुणवज्जियाण[1]	[(गुण)–(वज्ज) भूकृ 6/2]	= गुणहीन के कारण
गरुयं	(गरुय) 1/1 वि	= बड़ा
चिय	अव्यय	= निश्चय ही
कलंकं	(कलंक) 1/1	= कलंक

34.

गुणहीणा	[(गुण)–(हीण) भूकृ 1/2 अनि]	= गुणहीन
जे	(ज) 1/2 सवि	= जो
पुरिसा	(पुरिस) 1/2	= पुरुष
कुलेण	(कुल) 3/1	= कुल के कारण
गव्वं	(गव्व) 2/1	= गर्व
वहंति	(वह) व 3/2 सक	= धारण करते हैं
ते	(त) 1/2 सवि	= वे
मूढा	(मूढ) 1/2 वि	= मूढ़
वंसुप्पन्नो	[(वंस)+(उप्पन्नो)] [(वंस)–(उप्पन्न) भूकृ 1/1 अनि]	= बांस से उत्पन्न
वि	अव्यय	= यद्यपि
धणू	(धणु) 1/1	= धनुष
गुणरहिए[2]	[(गुण)–(रह) भूकृ 7/1]	= रस्सीरहित होने के कारण
नत्थि	अव्यय	= नहीं
टंकारो	(टंकार) 1/1	= टंकार

35.

जम्मंतरं	[(जम्म)+(अंतरं)] [(जम्म)–(अंतर) 1/1]	= जन्म-संयोग
न	अव्यय	= नहीं
गरुयं	(गरुय) 1/1 वि	= महान

---

1. कभी-कभी षष्ठी विभक्ति का प्रयोग तृतीया विभक्ति के स्थान पर पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-134)
2. कभी-कभी तृतीया विभक्ति के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-135)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गरुयं	(गरुय) 1/1 वि	= महान
पुरिसस्स[1]	(पुरिस) 6/1	= पुरुष के द्वारा
गुणगणारुहणं	[(गुण)+(गण)+(आरुहणं)] [(गुण)–(गण)–(आरुहण)) 1/1]	= गुण-समूह का ग्रहण
मुत्ताहलं	(मुत्ताहल) 1/1	= मोती
हि	अव्यय	= ही
गरुयं	(गरुय) 1/1 वि	= श्रेष्ठ
न	अव्यय	= नहीं
हु	अव्यय	= किन्तु
गरुयं	(गरुय) 1/1 वि	= श्रेष्ठ
सिप्पिसंपुडयं	[(सिप्पि)–(संपुड) 1/1 स्वार्थिक 'य' प्रत्यय]	=सीप का खोल

36.

खरफरुसं	[(खर) वि–(फरुस) 1/1 वि]	= रूखा और कठोर
सिप्पिउडं	[(सिप्पि)–(उड) 1/1]	= सीप का खोल
रयणं	(रयण) 1/1	= रत्न
तं	(त) 1/1 सवि	= वह
होइ	(हो) व 3/1 अक	= होता है
जं	(ज) 1/1 सवि	= जो
अणग्घेयं	(अणग्घेय) 1/1 वि	= बहुमूल्य
जाईइ	(जाइ) 3/1	= जन्म से
किं	(किं) 1/1 सवि	= क्या
व	अव्यय	= बतलाइए तो
किज्जइ	(कि) व कर्म 3/1 सक	= किया जाता है
गुणेहि	(गुण) 3/2	= गुणों से
दोसा	(दोस) 1/2	= दोष

---

1. कभी-कभी षष्ठी विभक्ति का प्रयोग तृतीया के स्थान पर पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-134)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

फुसिज्जंति	(फुस) व कर्म 3/2 सक	= पोंछ दिए जाते हैं

37.

जं	(ज)2/1 सवि	= जिस (बात) को
जाणइ	(जाण) व 3/1 सक	= समझता है
भणइ	(भण) व 3/1 सक	= कहता है
जणो	(जण) 1/1	= मनुष्य
गुणाण	(गुण) 6/2	= गुणों का
विहवाण	(विहव) 6/2	= वैभवों का
अंतरं	(अंतर) 1/1	= अन्तर
गरुयं	(गरुय) 1/1 वि	= बड़ा
लब्भइ	(लब्भइ) व कर्म 3/1 सक अनि	= प्राप्त किया जाता है
गुणेहि	(गुण) 3/2	= गुणों से
विहवो	(विहव) 1/1	= वैभव
विहवेहि	(विहव) 3/2	= वैभवों से
गुणा	(गुण) 1/2	= गुण
न	अव्यय	= नहीं
घेप्पंति	(घेप्पंति) व कर्म 3/2 सक अनि	= प्राप्त किये जाते हैं

38.

पासपरिसंठिओ	[(पास)–(परिसंठिअ) भूक 1/1 अनि]	= पास में स्थित
वि	अव्यय	= भी
हु	अव्यय	= पादपूर्ति
गुणहीणे	[(गुण)–(हीण) भूक 7/1 अनि]	= गुणहीन में
किं[1]	(किं) 1/1 स	= क्या
करेइ[1]	(कर) व 3/1 सक	= करेगा
गुणवंतो	(गुणवंत) 1/1 वि	= गुणवान
जायंधयस्स	[(जाय)+(अंधयस्स)] [(जाय) भूक–(अंधय) 4/1 वि]	= जन्मे हुए, अन्धे के लिए

---

1. प्रश्नवाचक शब्दों के साथ वर्तमानकाल का प्रयोग प्रायः भविष्यत्काल के अर्थ में होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दीवो	(दीव) 1/1	= दीपक
हत्थकओ	[(हत्थ)–(कअ) भूक 1/1 अनि]	= हाथ में पकड़ा हुआ
निप्फलो	(निप्फल) 1/1 वि	= निष्फल
च्चेय	अव्यय	= ही

39.

परलोयगयाणं	[(परलोय)–(गय) भूक 6/2 अनि]	= परलोक में गये हुए
पि	अव्यय	= भी
हु	अव्यय	= निश्चय ही
पच्छत्ताओ	(पच्छत्ताअ) 1/1	= पश्चाताप
न	अव्यय	= नहीं
ताण	(त) 6/2 सवि	= उन
पुरिसाणं	(पुंरिस) 6/2	= पुरुषों के
जाण	(ज) 6/2 सवि	= जिनके
गुणुच्छाहेणं	[(गुण)+(उच्छाहेणं)] [(गुण)–(उच्छाह) 3/1]	= गुणों के उत्साह से
जियंति	(जिय) व 3/2 अक	= जीते हैं
वंसे	(वंस) 7/1	= वंश में
समुप्पन्ना	(समुप्पन्न) भूक 1/2 अनि	= उत्पन्न

40.

सज्जणसलाहणिज्जे	[(सज्जण)-(सलाह) विधि कृ. 7/1]	= सज्जनों के द्वारा प्रशंसा किए जाने योग्य
पयम्मि	(पय) 7/1	= मार्ग पर
अप्पा	(अप्प) 1/1	= आत्मा
न	अव्यय	= नहीं
ठाविओ	(ठाव) भूक 1/1	= स्थापित की गई (है)
जेहिं	(ज) 3/2 स	= जिनके द्वारा
सुसमत्था	(सुसमत्थ) 1/2 वि	= सुसमर्थ
जे	(ज) 1/2 स	= जो
न	अव्यय	= नहीं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परोवयारिणो	(परोवयारि) 1/2 वि	= दूसरों का उपकार करनेवाले
तेहि	(त) 3/2 स	= उनके द्वारा
वि	अव्यय	= भी
न	अव्यय	= नहीं
किंपि	अव्यय	= कुछ

41.

सुसिएण	(सुस) भूक 3/1	= सूखे हुए
निहसिएण	(निहस) भूक 3/1	= घिसे हुए
वि	अव्यय	= भी
तह	अव्यय	= तथा
कह वि	अव्यय	= किसी न किसी प्रकार
हु	अव्यय	= निश्चय ही
चंदणेण	(चंदण) 3/1	= चन्दन के द्वारा
महमहियं	(महमह) भूक 1/1	= गन्ध फैली हुई
सरसा	(सरस) 1/1 वि	= सरस
वि	अव्यय	= भी
कुसुममाला	[(कुसुम)–(माला) 1/1]	= फूलों की माला
जह	अव्यय	= जिससे कि
जाया	(जा) भूक 1/1	= अस्तित्व में आई हुई
परिमल-विलक्खा	[(परिमल)–(विलक्खा) 1/1 वि]	= सुगन्ध से लज्जित

42.

एक्को	(एक्क) 1/1 वि	= एक
चिय	अव्यय	= ही
दोसो	(दोस) 1/1	= दोष
तारिसस्स	(तारिस) 6/1 वि	= उस जैसे
चंदणदुमस्स	[(चंदण)–(दुम) 6/1]	= चन्दन के वृक्ष का
विहिघडिओ	[(विहि)–(घड) भूक 1/1]	= विधि के द्वारा घड़े हुए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जीसे[1]	(जी) 6/1 स	= जिसके
दुट्ठभुयंगा	[(दुट्ठ)–(भुयंग) 1/2]	= दुष्ट सर्प
खणं	अव्यय	= क्षण के लिए
पि	अव्यय	= भी
पासं	(पास) 2/1	= पास को
न	अव्यय	= नहीं
मेल्लन्ति	(मेल्ल) व 3/2 सक	= छोड़ते हैं

43.

बहुतरुवराण	[(बहु) वि–(तरु)–(वर) 6/2 वि]	= बहुत बड़े वृक्षों के
मज्झे	(मज्झ) 7/1	= बीच में
चंदणविडवो	[(चंदण)–(विडव) 1/1]	= चन्दन की शाखा
भुयंगदोसेण	[(भुयंग)–(दोस) 3/1]	= सर्प दोष के कारण
छिज्झइ	(छिज्झइ) व कर्म 3/1 सक अनि	= काट दी जाती है
निरावराहो	(निरावराह) 1/1 वि	= अपराधरहित
साहु	(साहु) 1/1 आगे संयुक्त अक्षर (व्व) के आने से दीर्घ स्वर ह्रस्व स्वर हुआ है।	= भद्र पुरुष
व्व	अव्यय	= जैसे
असाहुसंगेण	[(असाहु)–(संग) 3/1]	= दुष्ट संग के कारण

44.

रयणायरेण	(रयणायर) 3/1	= समुद्र के द्वारा
रयणं	(रयण) 1/1	= रत्न
परिमुक्कं	(परिमुक्क) भूकृ 1/1 अनि	= परित्याग किया गया
जइ वि	अव्यय	= यद्यपि
अमुणियगुणेण	[(अमुणिय) भूकृ–(गुण) 3/1]	= नहीं जाने हुए, गुणों के कारण
तह वि	अव्यय	= तो भी
हु	अव्यय	= भी
मरगयखंडं	[(मरगय)–(खंड) 1/1]	= पन्ने का टुकड़ा
जत्थ	अव्यय	= जहाँ

---

1. यहाँ 'जीसे' (स्त्रीलिंग) का प्रयोग विचारणीय है। पुल्लिग का प्रयोग अपेक्षित है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गयं	(गय) भूक 1/1 अनि	= गया
तत्थ	अव्यय	= वहाँ
वि	अव्यय	= ही
महग्घं	(महग्घ) 1/1 वि	= मूल्यवान

45.

मा	अव्यय	= मत
दोसं	(दोस) 2/1	= दोष को
चिय	अव्यय	= ही
गेण्हह	(गेण्ह) विधि 2/2 सक	= ग्रहण करो
विरले	(विरल) 2/2 वि	= विरल
वि	अव्यय	= भी
गुणे	(गुण) 2/2	= गुणों की (को)
पसंसह	(पसंस) विधि 2/2 सक	= प्रशंसा करो
जणस्स	(जण) 6/1	= मनुष्य के
अक्खपउरो	[(अक्ख)-(पउर) 1/1 वि]	= बहुत अधिक रुद्राक्ष
वि	अव्यय	= भी
उवही	(उवहि) 1/1	= समुद्र
भण्णइ	(भण्णइ) व कर्म 3/1 सक अनि	= कहा जाता है
रयणायरो	(रयणायर) 1/1	= रत्नाकर
लोए	(लोअ) 7/1	= लोक में

46.

लच्छीइ	(लच्छी) 3/1	= लक्ष्मी के
विणा[1]	अव्यय	= बिना
रयणायरस्स	(रयणायर) 6/1	= रत्नाकर की
गंभीरिमा	(गंभीरिमा) 1/1	= गम्भीरता
तह	अव्यय	= उसी तरह
च्चेव	अव्यय	= ही

1. 'बिना' के योग में तृतीया, द्वितीया या पंचमी विभक्ति होती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सा	(ता) 1/1 सवि	= वह
लच्छी	(लच्छी) 1/1	= लक्ष्मी
तेण[1]	(त) 3/1 स	= उसके
विणा	अव्यय	= बिना
भण	(भण) विधि 2/1 सक	= कहो
कस्स	(क) 6/1 सवि	= किसके
न	अव्यय	= नहीं
मंदिरं	(मंदिर) 2/1	= घर
पत्ता	(पत्त>पत्ता) भूकृ 1/1 अनि	= पहुँची

47.

वडवाणलेण	(वडवाणल) 3/1	= वडवानल के द्वारा
गहिओ	(गह) भूकृ 1/1	= ग्रसा हुआ
महिओ	(मह) भूकृ 1/1	= मथा गया
य	अव्यय	= और
सुरासुरेहि	[(सुर)+(असुरेहि)] [(सुर)–(असुर) 3/2]	= सुर-असुरों द्वारा
सयलेहिं	(सयल) 3/2 वि	= सकल
लच्छीइ	(लच्छी) 3/1	= लक्ष्मी के द्वारा
उवहि[2]	(उवहि) 1/1 मूलशब्द	= समुद्र
मुक्को	(मुक्क) भूकृ 1/1 अनि	= त्यागा गया
पेच्छह	(पेच्छ) विधि 2/2 सक	= देखो
गंभीरिमा[2]	(गंभीरिमा) 2/1 मूलशब्द	= गम्भीरता को
तस्स	(त) 6/1 स	= उसकी

48.

रयणेहि	(रयण) 3/2	= रत्नों से
निरंतरपूरिएहि	[(निरंतर) अ = निरंतर–(पूर) भूकृ 3/2]	= निरन्तर भरे हुए

---

1. 'बिना' के योग में तृतीया, द्वितीया या पंचमी विभक्ति होती है।
2. किसी भी कारक के लिए मूल संज्ञा शब्द काम में लाया जाता है। (पिशल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 517)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रयणायरस्स	(रयणायर) 6/1	= रत्नाकर के
न	अव्यय	= नहीं
हु	अव्यय	= भी
गव्वो	(गव्व) 1/1	= गर्व
करिणो	(करि) 6/1	= हाथी की
मुत्ताहलसंसए	[(मुत्ताहल)–(संसअ) 7/1]	= मोती के संशय में
वि	अव्यय	= भी
मयविब्भला	[(मय)–(विब्भला) 1/1 वि]	= मद में तल्लीन
दिट्ठी	(दिट्ठि) 1/1	= दृष्टि

49.

रयणायरस्स	(रयणायर) 6/1	= समुद्र के
न	अव्यय	= नहीं
हु	अव्यय	= भी
होइ	(हो) व 3/1 अक	= होती है
तुच्छिमा	(तुच्छिमा) 1/1	= तुच्छता
निग्गएहि	(निग्गअ) भूक 3/2 अनि	= बाहर निकले हुए
रयणेहिं	(रयण) 3/2	= रत्नों के कारण
तह वि	अव्यय	= तो भी (फिर भी)
हु	अव्यय	= किन्तु
चंदसरिच्छा	[(चंद)–(सरिच्छ) 1/2 वि]	= चन्द्रमा के समान
विरला	(विरल) 1/2 वि	= थोड़े
रयणायरे	(रयणायर) 7/1	= समुद्र में
रयणा	(रयण) 1/2	= रत्न

50.

जइ वि	अव्यय	= यद्यपि
हु	अव्यय	= ही
कालवसेणं	[(काल)–(वस) 3/1]	= विधि के वश से
ससी	(ससि) 1/1	= चन्द्रमा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

समुद्दाउ	*(समुद्द) 5/1*	= *समुद्र से*
कह वि	अव्यय	= किसी तरह
विच्छुडिओ	(विच्छुडिअ) 1/1 वि	= बिछुड़ा हुआ
तह वि	अव्यय	= तो भी
हु	अव्यय	= भी
तस्स	(त) 6/1 स	= उसका
पयासो	(पयास) 1/1	= प्रकाश
आणंदं	(आणंद) 2/1	= आनन्द
कुणइ	(कुण) व 3/1 सक	= करता है
दूरे	अव्यय	= दूर होने पर
वि	अव्यय	= भी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ - 2
गउडवहो

1.

इह	अव्यय	= इस लोक में
ते	(त) 1/2 सवि	= वे
जअंति	(जअ) व 3/2 अक	= जीतते हैं
कइणो	(कइ) 1/2	= कवि
जअमिणमो	[(जअं)+(इणमो)]	
	जअं (जअ) 1/1	= जगत्
	इणमो (इम) 1/1 सवि	= वह
जाण	(ज) 6/2 सवि	= जिनकी
सअल-परिणामं	[(सअल) वि-(परिणाम) 1/1]	= सकल अभिव्यक्ति
वाआसु	(वाआ) 7/2	= वाणियों में
ठिअं	(ठिअ) भूकृ 1/1 अनि	= विद्यमान
दीसइ	(दीसइ) व कर्म 3/1 सक अनि	= देखा जाता है
आमोअ-घणं	[(आमोअ)-(घण) 1/1 वि]	= हर्ष से पूर्ण
व	अव्यय	= या
तुच्छं	(तुच्छ) 1/1	= तिरस्कार
व	अव्यय	= या

2.

णिअआए	(णिअअ→णिअआ) 3/1 वि	= स्वकीय
च्चिअ	अव्यय	= ही
वाआए	(वाआ) 3/1	= वाणी के द्वारा
अत्तणो	(अत्त) 6/1	= निज के
गारवं	(गारव) 2/1	= गौरव को
णिवेसंता	(णिवेस) वकृ 1/2	= स्थापित करते हुए
जे	(ज) 1/2 सवि	= जो
एंति	(ए) व 3/2 सक	= प्राप्त करते हैं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पसंसं	(पसंसा) 2/1	= प्रशंसा
च्चिअ	अव्यय	= निश्चय ही
जअंति	(जअ) व 3/2 अक	= जीतते हैं
इह	अव्यय	= इस लोक में
ते	(त) 1/2 सवि	= वे
महा-कइणो	[(महा) वि–(कइ) 1/2]	= महाकवि

3.

दोग्गच्चम्मि	(दोग्गच्च) 7/1	= निर्धनता में
वि	अव्यय	= भी
सोक्खाइँ	(सोक्ख) 1/2	= सुख
ताण	(त) 4/2 सवि	= उनके लिए
विहवे	(विहव) 7/1	= वैभव में
वि	अव्यय	= भी
होंति	(हो) व 3/2 अक	= होते हैं
दुक्खाइं	(दुक्ख) 1/2	= दुःख
कव्व-परमत्थ-रसिआइँ	[(कव्व)-(परमत्थ)-(रसिअ) 1/2 वि]	= काव्य-तत्त्व के रसिक
जाण	(ज) 6/2 सवि	= जिनके
जाअंति	(जाअ) व 3/2 अक	= होते हैं
हिअआइँ	(हिअअ) 1/2	= हृदय

4.

सोहेइ	(सोह) व 3/1 अक	= शोभती है
सुहावेइ	(सुहाव) व 3/1 सक	= सुखी करती है
अ	अव्यय	= तथा
उवहुज्जंतो	(उवहुज्जंत) कर्म वकृ 1/1 अनि	= उपभोग की जाती हुई
लवो	(लव) 1/1	= थोड़ी मात्रा
वि	अव्यय	= भी
लच्छीए	(लच्छी) 6/1	= लक्ष्मी की
देवी	(देवी) 1/1	= देवी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सरस्सई	(सरस्सई) 1/1	= सरस्वती
उण	अव्यय	= किन्तु
असमग्गा	(अ–समग्ग→अ–समग्गा) 1/1 वि	= अपूर्ण
किंपि	अव्यय	= किंचित्
विणडेइ	(विणड) व 3/1 सक	= उपहास करती है

5.

लग्गिहिइ	(लग्ग) भवि 3/1 सक	= लगेगी
ण	अव्यय	= नहीं
वा	अव्यय	= अथवा
सुअणे	(सुअण) 2/2	= सज्जनों को
वयणिज्जं	(वयणिज्ज) 1/1	= निन्दा
दुज्जणेहिं	(दुज्जण) 3/2	= दुर्जनों द्वारा
भण्णंतं	(भण्णंत) कर्म वकृ 1/1 अनि	= कही हुई
ताण	(त) 6/2 सवि	= उनके
पुण	अव्यय	= किन्तु
तं	(त) 1/1 सवि	= वह
सुअणाववाअ-दोसेण	[(सुअण)+(अववाअ)+(दोसेण)] [(सुअण)-(अववाअ)-(दोस) 3/1]	= सज्जनों की निन्दा-दोष के कारण
संघडइ	(संघड) व 3/1 अक	= घटित हो जाती है

6.

जाण	(ज) 4/2 स	= जिनके लिए
असमेहिं	(असम) 3/2 वि	= असमान के द्वारा
विहिआ	(विहिअ) भूकृ 1/1 अनि	= की गई
जाअइ	(जाअ) व 3/1 अक	= होती है
णिंदा	(णिंदा) 1/1	= निन्दा
समा[1]	(समा) 1/1 वि	= के समान
सलाहा	(सलाहा) 1/1	= प्रशंसा
वि	अव्यय	= भी

1. समा = के समान (सम→संमा)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णिंदा	(णिंदा) 1/1	= निन्दा
वि	अव्यय	= भी
तेहिं	(त) 3/2 सवि	= उनके द्वारा
विहिआ	(विहिअ) भूकृ 1/1 अनि	= की गई
ण	अव्यय	= नहीं
ताण	(त) 6/2 स	= उनके
मण्णे[1]	(मण्ण) 7/1	= मन को
किलामेइ	(किलाम) व 3/1 सक	= खिन्न करती है
7.		
हरइ	(हर) व 3/1 सक	= प्रसन्न करता है
अणू	(अणु) 1/1 वि	= छोटा
वि	अव्यय	= भी
पर-गुणो	[(पर) वि–(गुण) 1/1]	= दूसरे का गुण
गरुअम्मि	(गरुअ) 7/1 वि	= बड़े (गुण) में
वि	अव्यय	= भी
णिअ-गुणे	[(णिअ) वि–(गुण) 7/1]	= अपने गुण में
ण	अव्यय	= नहीं
संतोसो	(संतोस) 1/1	= सन्तोष
सीलस्स	(सील) 6/1	= शील का
विवेअस्स	(विवेअ) 6/1	= विवेक का
अ	अव्यय	= और
सारमिणं	[(सारं)+(इणं)]	
	सारं (सार) 1/1	= सार
	इणं (इम) 1/1 सवि	= यह
एत्तिअं	(एत्तिअ) 1/1 वि	= इतना
चेअ	अव्यय	= ही

---

1. कभी-कभी द्वितीया विभक्ति के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-135)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

8.

णिव्वाडंताण	(णिव्वाड) प्रे वकृ 4/2	= सिद्ध करते हुए के लिए
सिवं	(सिव) 2/1	= कल्याण को
सअलं	(सअल) 1/1 वि	= समग्र
चिअ	अव्यय	= ही
सिवअरं	(सिवअर) 1/1 तुवि	= अधिक कल्याणकारी
तहा	अव्यय	= इस प्रकार
ताण	(त) 4/2 स	= उनके लिए
णिव्वडइ	(णिव्वड) व 3/1 अक	= सिद्ध होता है
किं पि	अव्यय	= कुछ
जह	अव्यय	= जिससे
ते	(त) 1/2 स	= वे
वि	अव्यय	= भी
अप्पणा	अव्यय	= स्वयं
विम्हअमुवेंति	[(विम्हअं)+(उवेंति)]	
	विम्हअं (विम्हअ) 2/1	= आश्चर्य को
	उवेंति (उवे) व 3/2 सक	= प्राप्त करते है

9.

तं	(त) 1/1 सवि	= वह
खलु	अव्यय	= वास्तव में
सिरीए	(सिरी) 6/1	= लक्ष्मी की
रहस्सं	(रहस्स) 1/1	= रहस्य
जं	अव्यय	= कि
सुचरिअ-	[(सुचरिअ)+(मग्गण)+(एक्क)+	
मग्गणेक्क-	(हिअओ)] [(सुचरिअ) वि–(मग्गण)–	= सुचरित्र की खोज में
हिअओ	(एक्क) वि–(हिअअ) 1/1]	स्थिर हृदय
वि	अव्यय	= यद्यपि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अप्पाणमोसरंतं	[(अप्पाणं)+(ओसरंतं)]	
	अप्पाणं (अप्पाण) 2/1	= निज को
	ओसरंतं (ओसर) वकृ 2/1	= फिसलते हुए
गुणेहिं[1]	(गुण) 3/2	= गुणों से
लोओ	(लोअ) 1/1	= मनुष्य
ण	अव्यय	= नहीं
लक्खेइ	(लक्ख) व 3/1 सक	= देखता है

10.

एक्के	(एक्क) 1/2 सवि	= कुछ (व्यक्ति)
लहुअ-सहावा	[(लहुअ) वि–(सहाव) 1/2]	= तुच्छ, स्वभाव
गुणेहि	(गुण) 3/2	= गुणों के द्वारा
लहिउं[2]	(लह) हेकृ	= प्राप्त करने के लिए (की)
महंति[2]	(मह) व 3/2 सक	= इच्छा करते हैं
धण-रिद्धि	[(धण)–(रिद्धि) 2/1]	= धन वैभव को
अण्णे	(अण्ण) 1/2 सवि	= दूसरे
विसुद्ध-चरिआ	[(विसुद्ध) वि–(चरिअ) 1/2]	= विशुद्ध, चरित्र
विहवाहि[3]	(विहव) 3/2	= वैभव के द्वारा
गुणे	(गुण) 2/2	= गुणों को
विमग्गंति	(विमग्ग) व 3/2 सक	= चाहते हैं

11.

दूमिज्जंता	(दूम) कर्म वकृ 1/2	= पीड़ा दिये जाते हुए
हिअएण[4]	(हिअअ) 3/1	= हृदय में
किंपि	अव्यय	= कुछ
चिंतेंति	(चिंत) व 3/2 सक	= विचारते हैं

---

1. कभी-कभी पंचमी विभक्ति के स्थान पर तृतीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-136)
2. 'इच्छा' अर्थ की क्रियाओं के साथ हेत्वर्थक कृदन्त का प्रयोग होता है।
3. अपभ्रंश का प्रत्यय है।
4. कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर तृतीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-137)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जइ	अव्यय	= यदि
ण	अव्यय	= नहीं
जाणामि	(जाण) व 1/1 सक	= जानता हूँ
किरियासु	(किरिया) 7/2	= सावद्य क्रियाओं में
पुण	अव्यय	= किन्तु
पअट्टंति	(पअट्ट) व 3/2 अक	= प्रवृत्ति करते हैं
सज्जणा	(सज्जण) 1/2	= सज्जन
णावरद्धे	[(ण)+(अवरद्धे)]	
	ण (अव्यय)	= नहीं
	अवरद्धे (अवरद्ध) 7/1	= अपराध में
वि	अव्यय	= भी

12.

महिमं	(महिमा) 2/1	= महिमा
दोसाण	(दोस) 4/2	= दोषों के लिए
गुणा	(गुण) 1/2	= गुण
दोसा	(दोस) 1/2	= दोष
वि	अव्यय	= तथा
हु	अव्यय	= भी
देंति	(दा) व 3/2 सक	= प्रदान करते हैं
गुण-णिहाअस्स	[(गुण)-(णिहाअ) 4/1]	= गुण-समूह के लिए
दोसाण	(दोस) 6/2	= दोषों के
जे	(ज) 1/2 सवि	= जो
गुणा	(गुण) 1/2	= गुण
ते	(त) 1/2 स	= वे
गुणाण	(गुण) 6/2	= गुणों के
जइ	अव्यय	= यदि
ता	अव्यय	= तो
णमो	अव्यय	= नमस्कार
ताण	(त) 4/2 स	= उनके लिए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

13.

संसेविऊण	(सं-सेव) संकृ	= खूब भोग करके
दोसे	(दोस) 2/2	= दोषों को
अप्पा	(अप्प) 1/1	= आत्मा
तीरइ	(तीर) व 3/1 अक	= समर्थ होती है
गुण-ट्ठिओ	[(गुण)-(ट्ठिअ) भूकृ 1/1 अनि]	= गुणों को अवस्थित
काउं	(काउं) हेकृ अनि	= करने के लिए
णिव्वडिअ-गुणाण	[(णिव्वडिअ) वि- (गुण) 6/2]	= सिद्ध होने पर, गुणों के
पुणो	अव्यय	= किन्तु
दोसेसु	(दोस) 7/2	= दोषों में
मई	(मइ) 1/1	= मति
ण	अव्यय	= नहीं
संठाइ	(संठा) व 3/1 अक	= रहती है

14.

जह	अव्यय	= जैसे
जह	अव्यय	= जैसे
णग्घंति	[(ण)+(अग्घंति)]	
	(ण) अव्यय	= नहीं
	अग्घंति[1] (अग्घ) व 3/2 अक	= शोभायमान होंगे
गुणा	(गुण) 1/2	= गुण
जह	अव्यय	= जैसे
जह	अव्यय	= जैसे
दोसा	(दोस) 1/2	= दोष
अ	अव्यय	= तथा
संपइ	अव्यय	= इस समय
फलंति[1]	(फल) व 3/2 अक	= फलेंगे

---

1. कभी-कभी वर्तमानकाल तात्कालिक भविष्यत् काल का बोध कराता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अगुणाअरेण	[(अगुण)+(आअरेण) (अगुण)-(आअर) 3/1]	= अगुणों के आदर से
तह	अव्यय	= वैसे
तह	अव्यय	= वैसे
गुण-सुण्णं	[(गुण)-(सुण्ण) 1/1]	= गुण-शून्य
होहिइ	(हो) भवि 3/1 अक	= हो जाएगा
जअं	(जअ) 1/1	= जगत
पि	अव्यय	= भी

15.

अच्चंत-विएएण	[(अच्चंत) वि-(विएअ) 3/1 वि]	= अत्यन्त ओजस्वी होने के कारण
वि	अव्यय	= ही
गरुआण	(गरुअ) 6/2 वि	= महान के
ण	अव्यय	= नहीं
णिव्वडंति	(णिव्वड) व 3/2 अक	= सम्पन्न होते हैं
संकप्पा	(संकप्प) 1/2	= संकल्प
विज्जुज्जोओ	[(विज्जु)+(उज्जोओ)] [(विज्जु)-(उज्जोअ) 1/1]	= बिजली का प्रकाश
बहलत्तणेण	(बहलत्तण) 3/1	= पुष्कलता के कारण
मोहेइ	(मोह) व 3/1 सक	= अस्त-व्यस्त कर देता है
अच्छीइं	(अच्छि) 2/2	= आँखों को

16.

उवअरणीभूअ-जआ	[(उवअरणी) वि-(भूअ) भूकृ-(जअ)[1] 2/2]	= उपकार करने वाले, हुए, मानव जाति के अन्दर
ण	अव्यय	= नहीं
हु	अव्यय	= आश्चर्य
णवर	अव्यय	= केवल

---

1. कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-137) तथा 'जअ' 'मानव जाति' अर्थ में बहुवचन में प्रयुक्त होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ण	अव्यय	= नहीं
पाविआ	(पाव) भूकृ 1/2	= पहुँचे
पहु-ट्ठाणं	[(पहु) वि-(ट्ठाण) 2/1]	= उच्च स्थान को
उवअरणं	(उवअरण) 2/1	= साधन
पि	अव्यय	= भी
ण	अव्यय	= नहीं
जाआ	(जा) भूकृ 1/2	= पाया
गुण-गुरुणो	[(गुण)-(गुरु) 1/2]	= गुणों में महान
काल-दोसेण	[(काल)-(दोस) 3/1]	= काल-दोष से

17.

विसइ	(विस) व 3/1 अक	= प्रवेश करता है
च्चेअ	अव्यय	= ही
सरहसं	क्रिविअ 2/1	= उत्सुकता से
जेसुं	(ज) 7/2 सवि	= जिन (घरों) में
किं	(किं) 1/1 स	= क्या
तेहिं	(त) 3/2 सवि	= उनसे
खंडिआसेहिं	[(खंडिअ)+(आसेहिं)] [(खंडिअ)-(आस) 3/2]	= छिन्न आशाओं से
णिक्खमइ	(णिक्खम) व 3/1 अक	= बाहर निकलता है
जेसु	(ज) 7/2 सवि	= जिनमें
परिओस-णिब्भरो	[(परिओस)-(णिब्भर) 1/1 वि]	= पूर्ण सन्तोष
ताइँ	(त) 1/2 सवि	= वे
गेहाइं	(गेह) 1/2	= घर

18.

साहीण-सज्जणा	[(साहीण) वि-(सज्जण) 1/2]	= निकट, सज्जन
वि	अव्यय	= ही
हु	अव्यय	= आश्चर्य
णीअ-पसंगे	[(णीअ) वि-(पसंग) 7/1]	= नीच संगति में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रमंति	(रम) व 3/2 अक	= प्रसन्न होते हैं
काउरिसा	(काउरिस) 1/2	= दुष्ट पुरुष
सा	(ता) 1/1 स	= वह
इर	अव्यय	= निश्चय ही
लीला	(लीला) 1/1	= स्वेच्छाचारिता
जं	अव्यय	= कि
काअ-धारणं	[(काअ)-(धारण) 1/1]	= काँच ग्रहण
सुलह-रअणाण	[(सुलह) वि-(रअण)[1] 6/2]	= सुलभ होने पर, रत्नों के

19.

किविणाण	(किविण) 6/2	= कृपण के
अण्ण-विसए	[(अण्ण) वि-(विसअ) 7/1]	= दूसरों के विषय में
दाण-गुणे	[(दाण)-(गुण) 2/2]	= दान-गुण को
अहिसलाहमाणाण	(अहिसलाह) वकृ 6/2	= सराहते हुए
णिअ-चाए	[(णिअ) वि-(चाअ) 7/1]	= निज त्याग में
उच्छाहो	(उच्छाह) 1/1	= उत्साह
ण	अव्यय	= नहीं
णाम	अव्यय	= आश्चर्य
कह	अव्यय	= कैसे
वा	अव्यय	= और
ण	अव्यय	= नहीं
लज्जा	(लज्जा) 1/1	= लज्जा
वि	अव्यय	= भी

20.

सइ	अव्यय	= सदा
जाढर-चिंताअड्ढिअं	[(जाढर) वि-(चिंता)-(अड्ढिअ) 1/1 वि]	= पेट से सम्बन्धित चिन्ता से खिंचा हुआ
व	अव्यय	= तथा

1. कभी-कभी षष्ठी विभक्ति का प्रयोग सप्तमी के स्थान पर होता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-134)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हिअअं	(हिअअ) 1/1	= हृदय
अहो	अव्यय	= नीचे
मुहं	(मुह) 1/1	= मुख
जाण	(ज) 6/2 सवि	= जिनका
उद्धुर-चित्ता	[(उद्धुर) वि-(चित्त) 1/2]	= ऊँचे उद्देश्य
कह	अव्यय	= कैसे
णाम	अव्यय	= सम्भव
होंतु	(हो) विधि 3/2 अक	= हों
ते	(त) 7/2 सवि	= वे
सुण्ण-ववसाया	[(सुण्ण) वि-(ववसाय) 5/1]	= प्रयत्न से विहीन

21.

अघडिअ-परावलंबा	[(अघडिअ)+(पर)+(अवलंबा)] [(अघडिअ) भूकृ- (पर) वि-(अवलंब) 1/2]	= नहीं बनाए गए दूसरे सहारे
जह	अव्यय	= जैसे
जह	अव्यय	= जैसे
गरुअत्तणेण	(गरुअत्तण) 3/1	= सम्मान से
विहडंति	(विहड) व 3/2 अक	= अलग होते हैं
तह	अव्यय	= वैसे
तह	अव्यय	= वैसे
गरुआण[1]	(गरुअ) 6/2 वि	= महापुरुषों के द्वारा
हवंति	(हव) व 3/2 अक	= होती है
बद्ध-मूलाओ	(बद्धमूल >बद्धमूला) 1/2 वि	= जड़ पकड़े हुए
कित्तीओ	(कित्ति) 1/2	= कीर्ति

22.

तण्हा	(तण्हा) 1/1	= तृष्णा

---

1. कभी-कभी तृतीया विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण 3-134)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अखंडिअ	(अखंडिअ) 1/1 वि आगे संयुक्त अक्षर (च्चिअ) के आने से दीर्घ स्वर ह्रस्व स्वर हुआ है।	= नहीं मिटाई गई
च्चिअ	अव्यय	= भी
विहवे	(विहव) 7/1	= सम्पत्ति में
अच्चुण्णए	(अच्चुण्णअ) 2/2 वि	= बहुत ऊँची को
वि	अव्यय	= आश्चर्य
लहिऊण	(लह) संकृ	= प्राप्त करके
सेलं[1]	(सेल) 2/1	= पर्वत पर
पि	अव्यय	= भी
समारुहिऊण[1]	(समारुह) संकृ	= चढ़कर
किंव	अव्यय	= क्या
गअणस्स[2]	(गअण) 6/1	= गगन पर
आरूढं	(आरूढ) 1/1	= चढ़ना

---

1. गति अर्थ के योग में द्वितीया विभक्ति होती है।
2. कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण 3-134)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ - 3
दशवैकालिक

1.

समाए	(सम→समा) 7/1 वि	= राग-द्वेष से रहित
पेहाए	(पेहा) 7/1	= चिन्तन में
परिव्वयंतो	(परिव्वय) वकृ 1/1	= भ्रमण करता हुआ
सिया	अव्यय	= कभी
मणो	(मण) 1/1	= मन
निस्सरई[1]	(निस्सर) व 3/1 अक	= निकल जाता है
बहिद्धा	अव्यय	= बाहर
न	अव्यय	= नहीं
सा	(ता) 1/1 सवि	= वह
महं	(अम्ह) 6/1 स	= मेरी
नो	अव्यय	= नहीं
वि	अव्यय	= निश्चय ही
अहं	(अम्ह) 1/1 स	= मैं
पि	अव्यय	= भी
तीसे	(ती) 6/1 स	= उसका
इच्चेव	अव्यय	= इस प्रकार
ताओ	(ता) 5/1 स	= उससे
विणएज्ज	(वि–णी→वि–णएज्ज) विधि 3/1 सक अनि	= हटावे
रागं	(राग) 2/1	= आसक्ति को

---

1. छन्द की मात्रा की पूर्ति हेतु 'इ' को 'ई' किया गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

2.

आयावयाही[1]	(आयावय) प्रे[2] अनि विधि 2/1 सक	= तपा
चय	(चय) विधि 2/1 सक	= छोड़
सोगुमल्ल	(सोगुमल्ल) 2/1	= अति कोमलता को
कामे	(काम) 2/2	= इच्छाओं को
कमाही[1]	(कम) विधि 2/1 सक	= वश में कर
कमियं	(कम) भूक 1/1	= पार किये गए
खु	अव्यय	= निश्चय ही
दुक्खं	(दुक्ख) 1/1	=दुःख
छिंदाहि[1]	(छिंद) विधि 2/1 सक	= नष्ट कर
दोसं	(दोस) 2/1	= द्वेष को
विणएज्ज	(वि–णी→विणएज्ज) विधि 2/1 सक अनि	= हटा
रागं	(राग) 2/1	= राग को
एवं	अव्यय	= इस प्रकार
सुही	(सुहि) 1/1 वि	= सुखी
होहिसि	(हो) भवि 2/1 अक	= होगा
संपराए	(संपराअ) 7/1	= संसार में

3.

सव्वभूयऽ-प्पभूयस्स	[(सव्व)+(भूय)+(अप्प)+(भूयस्स)]	
	[(सव्व)–(भूय)[3] –(अप्प)–(भूय)[4] 6/1[5] वि]	= सब प्राणियों का, अपने समान के कारण

---

1. यहाँ रूप बनना चाहिए— आयावयहि, पर कभी-कभी विधि में अन्त्यस्थ अ (य) के स्थान पर आ (या) हो जाता है। इसी प्रकार ''कमाही'', 'छिंदाहि' में है। (हेम प्राकृत व्याकरण 3-158) । यहाँ छन्द की मात्रा की पूर्ति हेतु 'हि' को 'ही' किया गया है।
2. आतप् (अय) आतापय→आयावय।
3. भूय = प्राणी
4. भूय (वि) = समान
5. कभी-कभी षष्ठी विभक्ति का प्रयोग तृतीया या पंचमी के स्थान पर पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण 3-134)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सम्मं	अव्यय	= अच्छी तरह से
भूयाइं[1]	(भूय) 2/2	= प्राणियों में
पासओ	(पासअ) 1/1 वि	= दर्शन करनेवाला
पिहियासवस्स[2]	[(पिहिय)+(आसवस्स)] [(पिहिय) भूकृ अनि–(आसव) 6/1]	= रोके हुए आश्रव के कारण
दंतस्स[2]	(दंत) भूकृ 6/1 अनि	= आत्म-नियन्त्रित होने के कारण
पावं	(पाव) 2/1 वि	= अशुभ
कम्मं	(कम्म) 2/1	= कर्म को
न	अव्यय	= नहीं
बंधई[3]	(बंध) व 3/1 सक	=बाँधता है

4.

पढमं	अव्यय	= सर्वप्रथम
नाणं	(नाण) 2/1	= ज्ञान
तओ	अव्यय	= बाद में
दया	(दया) 1/1	= करुणा
एवं	अव्यय	= इस प्रकार
चिट्ठइ	(चिट्ठ) व 3/1 अक	= आचरण करता है
सव्वसंजए	[(सव्व)–(संजअ) 1/1 वि]	= प्रत्येक संयत
अन्नाणी	(अन्नाणी) 1/1 वि	= अज्ञानी
किं	(किं) 2/1 वि	= क्या
काही[4]	(काही) भवि 3/1 सक	= करेगा
किं वा	अव्यय	= कैसे

---

1. कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण 3-137)
2. कभी-कभी षष्ठी विभक्ति का प्रयोग तृतीया या पंचमी के स्थान पर पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण 3-134)
3. पूरी या आधी गाथा के अन्त में आनेवाली 'इ' का क्रियाओं में 'ई' हो जाता है। (पिशल: प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 138)
4. पिशल: प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 771 (अर्धमागधी में 'काही' भी होता है।)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नाहिइ	(ना) भवि 3/1 सक.	= जानेगा
छेय[1]	(छेय) मूल शब्द 2/1	= हित को
पावगं	(पावग) 2/1	= अहित को
5.		
सोच्चा	(सोच्चा) संकृ अनि	= सुनकर
जाणइ	(जाण) व 3/1 सक	= समझता है
कल्लाणं	(कल्लाण) 2/1 वि	= मंगलप्रद को
सोच्चा	(सोच्चा) संकृ अनि	= सुनकर
जाणइ	(जाण) व 3/1 सक	= समझता है
पावगं	(पावग) 2/1 वि	= अनिष्टकर को
उभयं	(उभय) 2/1 वि	= दोनों को
पि	अव्यय	= भी
जाणई[2]	(जाण) वं 3/1 सक	= समझता है
सोच्चा	(सोच्चा) संकृ अनि	= सुनकर
जं	(ज़) 1/1 सवि	= जो
छेयं	(छेय) 1/1 वि	= मंगलप्रद
तं	(त) 2/1 सवि	= उसको (उसका)
समायरे[3]	(समायर) विधि 3/1 सक	= आचरण करे
6.		
तत्थिमं	[(तत्थ)+(इमं)]	
	(तत्थ) अव्यय	= वहाँ पर
	इमं (इम) 1/1 सवि	= यह
पढमं	(पढम) 1/1 वि	= सर्वप्रथम
ठाणं	(ठाण) 1/1	= स्थान
महावीरेण	(महावीर) 3/1	= महावीर के द्वारा

---

1. किसी भी कारक के लिए मूल संज्ञा-शब्द काम में लाया जा सकता है। (प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 17)
2. छन्द की मात्रा की पूर्ति हेतु 'इ' को 'ई' किया गया है।
3. पिशल: प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 683

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देसियं	(देस) भूक 1/1	= उपदिष्ट
अहिंसा	(अहिंसा) 1/1	= अहिंसा
निउणा	क्रिविअ	= सूक्ष्म रूप से
दिट्ठा	(दिट्ठ→दिट्ठा) भूक 1/1 अनि	= जानी गई है
सव्वभूएसु	[(सव्व)–(भूअ) 7/2]	= सब प्राणियों के प्रति
संजमो[1]	(संजम) 1/1	= करुणाभाव
7.		
न	अव्यय	= नहीं
बाहिरं	(बाहिर) 2/1 वि	= बाह्य को (का)
परिभवे	(परिभव) विधि 3/1 सक	= तिरस्कार करे
अत्ताणं	(अत्ताण) 2/1	= अपने को
न	अव्यय	= नहीं
समुक्कसे	(समुक्कस) विधि 3/1 सक	= ऊँचा दिखाए
सुयलाभे	[(सुय)–(लाभ) 7/1]	= ज्ञान का लाभ होने पर
न	अव्यय	= नहीं
मज्जेज्जा	(मज्ज) विधि 3/1 अक	= गर्व करे
जच्चा	(जच्चा) 6/1 अनि	= जाति का
तवसि[2]	(तवसि) मूल शब्द 6/1 वि	= तपस्वी का
बुद्धिए[3]	(बुद्धि) 6/1	= बुद्धि का
8.		
एवं	अव्यय	= इसी प्रकार
धम्मस्स	(धम्म) 6/1	= धर्म का
विणओ	(विणअ) 1/1	= विनय

---

1. संजम=संयम=करुणा की भावना, दयाभाव (आप्टे : संस्कृत-हिन्दी कोष)
2. किसी भी कारक के लिए मूल संज्ञा शब्द (विशेषण भी) काम में लाया जा सकता है। (पिशल: प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 517) अपभ्रंश में षष्ठी में भी मूल शब्द ही काम में लाया जाता है।
3. विभक्ति जुड़ते समय दीर्घ-स्वर बहुधा कविता में ह्रस्व हो जाते हैं। (पिशल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 182)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मूलं	(मूल) 1/1	= मूल
परमो	(परम) 1/1 वि	= अन्तिम
से	(त) 6/1 स	= उसका
मोक्खो	(मोक्ख) 1/1	= परमशान्ति
जेण	अव्यय	= जिससे
कित्तिं	(कित्ति) 2/1	= कीर्ति
सुयं	(सुय) 2/1	= ज्ञान
सग्घं	(सग्घ) 2/1 वि	= प्रशंसनीय
निस्सेसं	(निस्सेस) 2/1 वि	= समस्त
चाभिगच्छई	[(च)+(अभिगच्छई)]	
	(च) अव्यय	= और
	अभिगच्छई[1] (अभिगच्छ) व 3/1 सक	= प्राप्त करता है

9.

तहेव	अव्यय	= उसी प्रकार
अविणीयप्पा	[(अविणीय)+(अप्पा)]	
	[(अविणीय) वि–(अप्प) 1/2]	= अविनीत, मनुष्य
उववज्झा	(उववज्झ) 1/2 वि	= राजकीय वाहन के रूप में काम आनेवाले
हया	(हय) 1/2	= घोड़े
गया	(गय) 1/2	= हाथी
दीसंति	(दीसंति) व कर्म 3/2 सक अनि	= देखे जाते हैं
दुहमेहंता	[(दुहं)+(एहंता)]	
	दुहं[2] (दुह) 2/1 एहंता (एह) वकृ 1/2	= दुःख में, बढ़ते हुए

---

1. पूरी या आधी गाथा के अन्त में आने वाली 'इ' का क्रियापदों में बहुधा 'ई' हो जाता है। (पिशल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 138)
2. कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण, 3-137)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आभिओग-मुवट्ठिया	[(आभिओगं)+(उवट्ठिया)] आभिओगं[1] (आभिओग) 2/1 उवट्ठिया (उवट्ठिय) भूकृ 1/2 अनि	= प्रयास में, लगे हुए
10.		
तहेव	अव्यय	= उसी प्रकार
सुविणीयप्पा	[(सुविणीय)+(अप्पा)] [(सुविणीय) वि–(अप्प) 1/2]	= विनीत, मनुष्यों ने
उववज्झा	(उववज्झ) 1/2 वि	= राजकीय वाहन के रूप में काम आनेवाले
हया	(हय) 1/2	= घोड़े
गया	(गय) 1/2	= हाथी
दीसंति	(दीसंति) व कर्म 3/2 सक अनि	= देखे जाते हैं
सुहमेहंता	[(सुहं)+(एहंता)] सुहं[1] (सुह) 2/1 एहंता (एह) वकृ 1/2	= सुख में, बढ़ते हुए
इड्ढि	(इड्ढि) 2/1	= वैभव
पत्ता	(पत्त) भूकृ 1/2 अनि	= प्राप्त किया
महायसा[2]	[(महा)–(यस) 5/1]	= महान यश के कारण
11.		
तहेव	अव्यय	= उसी प्रकार
सुविणीयप्पा	[(सुविणीय)+(अप्पा)] [(सुविणीय) वि–(अप्प) 1/2]	= विनीत, मनुष्यों ने
लोगंसि	(लोग) 7/1	= लोक में
नर-नारिओ[3]	[(नर)–(नारी) 1/2]	= नर-नारियाँ
दीसंति	(दीसंति) व कर्म 3/2 सक अनि	= देखी जाती हैं

---

1. कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण, 3-137)
2. 'कारण' अर्थ में तृतीया या पंचमी विभक्ति का प्रयोग किया जाता है।
3. नारीओ→नारिओ, विभक्ति जुड़ते समय दीर्घ स्वर बहुधा कविता में ह्रस्व हो जाते हैं। (पिशल: प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 182)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुहमेहंता	[(सुहं)+(एहंता)] सुहं[1] (सुह) 2/1 एहंता (एह) वकृ 1/2	= सुख में, बढ़ती-हुई
इड्ढिं	(इड्ढि) 2/1	= वैभव
पत्ता	(पत्त) भूकृ 1/2 अनि	= प्राप्त किया
महायसा[2]	[(महा)–(यस) 5/1]	= महान यश के कारण

12.

अप्पणट्ठा	[(अप्पण)+(अट्ठा)] [(अप्पण)-(अट्ठा) 1/1]	= निज के लिए
परट्ठा	[(पर)+(अट्ठा)] [(पर)-(अट्ठा) 1/1]	= दूसरे के लिए
वा	अव्यय	= या
कोहा	(कोह) 5/1	= क्रोध से
वा	अव्यय	= या
जइ वा	अव्यय	= भले ही
भया	(भय) 5/1	= भय से
हिंसगं	(हिंसग) 2/1 वि	= पीड़ाकारक
न	अव्यय	= न
मुसं	(मुसा) 2/1	= असत्य
बूया[3]	(बूया) विधि 3/1 सक अनि	= बोले
नो	अव्यय	= न
वि	अव्यय	= ही
अन्नं[4]	(अन्न) 2/1	= दूसरे से

---

1. कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-137)
2. 'कारण' अर्थ में तृतीया या पंचमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है।
3. पिशल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 685
4. नियम से प्रेरणार्थक धातुओं के साथ मूल धातु के कर्ता में तृतीया होती है, किन्तु बोलना, जाना, जानना आदि अर्थों वाली धातुओं के प्रेरणार्थक रूप के साथ मूल धातु के कर्ता में तृतीया न होकर द्वितीया होती है। इसलिए यहाँ 'अन्नं' में द्वितीया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वयावए	(वय→वयाव) प्रे विधि 3/1 सक	= बुलवाए
13.		
अप्पत्तियं	(अप्पत्तिय) 1/1	= मानसिक पीड़ा
जेण	अव्यय	= जिससे
सिया[1]	(सिया) विधि 3/1 अक अनि	= हो
आसु	अव्यय	= शीघ्र
कुप्पेज्ज	(कुप्प) विधि 3/1 अक	= क्रोध करने लगे
वा	अव्यय	= और
परो	(पर) 1/1	= दूसरा
सव्वसो	अव्यय	= सर्वथा/बिल्कुल
तं	(त) 2/1 सवि	= उस
न	अव्यय	= न
भासेज्जा	(भास) विधि 3/1 सक	= बोले
भासं	(भासा) 2/1	= भाषा को
अहियगामिणिं	[(अहिय)-(गामिणी) 2/1 वि]	= अहित करनेवाली
14.		
सज्झाय-सज्झाणरयस्स	[(सज्झाय)-(सज्झाण)-(रय) 6/1 वि]	= स्वाध्याय और सद्-ध्यान में लीन का
ताइणो	(ताइ) 6/1 वि	= उपकारी का
अपावभावस्स	[(अपाव)-(भाव) 6/1]	= निष्पाप मन का
तवे	(तव) 7/1	= ताप में
रयस्स	(रय) 6/1 वि	= लीन (व्यक्ति) का
विसुज्झई[2]	(विसुज्झ) व 3/1 अक	= शुद्ध हो जाता है
जं	(ज) 1/1 सवि	= जो
से[3]	अव्यय	= वाक्य की शोभा
मलं	(मल) 1/1	= दोष

1. पिशल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 685
2. छन्द की मात्रा की पूर्ति हेतु 'इ' को 'ई' किया गया है।
3. वाक्य की शोभा (पिशल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 624)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुरेकडं	(पुरेकड) 1/1 वि	= पूर्व में किया हुआ
समीरियं	(समीर) भूकृ 1/1	= झकझोरे हुए
रुप्पमलं	[(रुप्प)-(मल) 1/1]	= सोने का मैल
व	अव्यय	= जैसे कि
जोइणा	(जोइ) 3/1	= अग्नि के द्वारा

15.

विणयं[1]	(विणय) 2/1	= विनय में
पि	अव्यय	= भी
जो	(ज) 1/1 सवि	= जो
उवाएण	(उवाअ) 3/1	= युक्ति के द्वारा
चोइओ	(चोअ) भूकृ 1/1	= प्रेरित
कुप्पई[2]	(कुप्प) व 3/1 अक	= क्रोध करता है
नरो	(नर) 1/1	= मनुष्य
दिव्वं	(दिव्व) 2/1 वि	= दिव्य
सो	(त) 1/1 सवि	= वह
सिरिमेज्जंतिं	[(सिरिं)+(एज्जंतिं)] सिरिं (सिरी) 2/1 एज्जंतिं (ए→एज्ज→एज्जंत→एज्जंती) वकृ 2/1	= सम्पत्ति को, आती हुई
दंडेण	(दंड) 3/1	= डण्डे से
पडिसेहए	(पडिसेह) व 3/1 सक	= रोक देता है

16.

दुग्गओ	(दुग्गअ) 1/1	= दुष्ट हाथी
वा	अव्यय	= जैसे
पओएणं	(पओअ) 3/1	= अंकुश के द्वारा
चोइओ	(चोअ) भूकृ 1/1	= प्रेरित

---

1. कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-137)
2. छन्द की मात्रा की पूर्ति हेतु 'इ' को 'ई' किया गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वहई[1]	(वह) व 3/1 सक	= आगे चलाता है
रहं	(रह) 2/1	= रथ को
एवं	अव्यय	= इसी प्रकार
दुब्बुद्धि[2]	(दुब्बुद्धि) मूल शब्द 1/1	= दुर्बुद्धि
किच्चाणं[3]	(किच्च) 6/2	= कर्तव्यों को
वुत्तो	(वुत्त) भूकृ 1/1 अनि	= कहा हुआ
वुत्तो	(वुत्त) भूकृ 1/1 अनि	= कहा हुआ
पकुव्वई[4]	(पकुव्व) व 3/1 सक	= करता है

17.

मुहुत्तदुक्खा	[(मुहुत्त)-(दुक्ख) 1/2 वि]	= थोड़ी देर के लिए, दुःख
हु	अव्यय	= ही
हवंति	(हव) व 3/2 अक	= होते हैं
कंटया	(कंटय) 1/2	= काँटे
अओमया	(अओमय) 1/2 वि	= लोहे से बने हुए
ते	(त) 1/2 सवि	= वे
वि	अव्यय	= तथा
तओ	अव्यय	= बाद में
सुउद्धरा	(सुउद्धर) 1/2 वि	= आसानी से निकाले जा सकने वाले
वायादुरुत्ताणि	[(वाया)-(दुरुत्त) 1/2]	= वाणी के द्वारा, दुर्वचन
दुरुद्धराणि	(दुरुद्धर) 1/2 वि	= कठिनाई से निकाले जा सकने वाले

---

1. छन्द की मात्रा की पूर्ति हेतु 'इ' को 'ई' किया गया है।
2. किसी भी कारक के लिए मूल संज्ञा शब्द का प्रयोग किया जा सकता है। (पिशल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 517)
3. कभी-कभी द्वितीया विभक्ति के स्थान पर षष्ठी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-134)
4. पूरी या आधी गाथा के अन्त में आने वाली 'इ' का क्रियापदों में बहुधा 'ई' हो जाता है। (पिशल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 138)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वेराणुबंधीणि	[(वेर)+(अणुबंधीणि)] [(वेर)-(अणुबंधि) 1/2 वि]	= वैर को बाँधनेवाले
महब्भयाणि	(महब्भय) 1/2 वि	= महा भय पैदा करनेवाले
18.		
गुणेहिं[1]	(गुण) 3/2	= सुगुणों के कारण
साहू	(साहु) 1/1	= साधु
अगुणेहऽसाहू	[(अगुणे)+(ह)+(असाहू)]	
	अगुणे[2] (अगुण) 7/1	= दुर्गुण समूह के कारण
	(ह) अव्यय	= ही
	असाहू (असाहु) 1/1	= असाधु
गेण्हाहि[3]	(गेण्ह) आज्ञा 2/1 सक	= ग्रहण करो
साहूगुण	[(साहू[4])-(गुण) मूल शब्द 2/2]	= साधु के लिए, सुगुणों को
मुंचऽसाहू	[(मुंच)+(असाहू)]	
	मुंच[5] (मुंच) आज्ञा 2/1 सक	
	असाहू (असाहु) 1/1	= छोड़ो, असाधु
वियाणिया[6]	(वियाण) संकृ	= जानकर
अप्पगमप्पएणं	[(अप्पगं)+(अप्पएणं)]	
	अप्पगं (अप्प) 'ग' स्वार्थिक 2/1	
	अप्पएणं (अप्प) 'अ' स्वार्थिक 3/1	= आत्मा को, आत्मा के द्वारा
जो	(ज) 1/1 सवि	= जो

---

1. कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर तृतीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-137)
2. कभी-कभी तृतीया के स्थान पर सप्तमी विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-135) तथा वर्ग विशेष का बोध कराने के लिए एकवचन तथा बहुवचन का प्रयोग किया जा सकता है।
3. पिशल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 689
4. समासगत शब्दों में रहे हुए स्वर परस्पर में हस्व के स्थान पर दीर्घ और दीर्घ के स्थान पर हस्व हो जाते हैं, (यहाँ साहु→साहू हुआ है) (हेम प्राकृत व्याकरण : 1-4)
5. पिशल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 689
6. पिशल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 834, 837, 838

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

राग-दोसेहिं[1]	[(राग)-(दोस) 3/2]	= राग-द्वेष में
समो	(सम) 1/1 वि	= समान
स	(त) 1/1 सवि	= वह
पुज्जो	(पुज्ज) 1/1 वि	= पूज्य

19.

विविहगुणतवोरए	[(विविह)-(गुण)-(तवोरअ) 1/1]	= अनेक प्रकार के शुभ परिणामों को, तप में लीन
य	अव्यय	= तथा
निच्चं	अव्यय	= सदा
भवइ	(भव) व 3/1 अक	= होता है
निरासए	(निरासअ) 'अ' स्वार्थिक 1/1 वि	= आशा से शून्य
निज्जरट्ठिए	[(निज्जरा)+(अट्ठिए)] [(निज्जरा)-(अट्ठिअ) 1/1 वि]	= कर्म-क्षय का इच्छुक
तवसा	(तव) 3/1 अनि	= तप के द्वारा
धुणइ	(धुण) व 3/1 सक	= नष्ट कर देता है
पुराणपावगं	[(पुराण)-(पावग) 2/1]	= पुराने पापों को
जुत्तो	(जुत्त) 1/1 वि	= संलग्न
सया	अव्यय	= सदा
तवसमाहिए[2]	[(तव)-(समाहि) 7/1]	= तप-साधना में

20.

जया	अव्यय	= जब
य	अव्यय	= सर्वथा
चयई[3]	(चय) व 3/1 सक	= छोड़ देता है

---

1. कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर तृतीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-137)
2. समाहीए→समाहिए, विभक्ति जुड़ते समय दीर्घ स्वर बहुधा कविता में ह्रस्व कर दिये जाते हैं। (पिशल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 182)
3. पूरी या आधी गाथा के अन्त में आनेवाली 'इ' का क्रियापदों में बहुधा 'ई' हो जाता है। (पिशल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 138)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

धम्मं	(धम्म) 2/1	= धर्म को
अणज्जो	(अणज्ज) 1/1 वि	= अज्ञानी
भोगकारणा	[(भोग)-(कारण) 5/1]	= भोग के प्रयोजन से
से	(त) 1/1 सवि	= वह
तत्थ	(त) 7/1 स	= उसमें
मुच्छिए	(मुच्छिअ) 1/1 वि	= मूर्च्छित
बाले	(बाल) 1/1 वि	= अज्ञानी
आयइं	(आयइ) 2/1	= भविष्य को
नावबुज्झई[1]	[(न)+(अवबुज्झई)]	
	न (अव्यय)	= नहीं
	अवबुज्झई[1] (अवबुज्झ) व 3/1 सक	= समझता है

21.

जत्थेव	[(जत्थ)+(एव)]	
	(जत्थ) अव्यय	= जहाँ
	(एव) अव्यय	= भी
पासे	(पास) विधि 3/1 सक	= देखे
कइ	अव्यय	= कहीं
दुप्पउत्तं	(दुप्पउत्त) भूकृ 2/1 अनि	= खराब किया हुआ
काएण	(काअ) 3/1	= कायां से
वाया[2]	(वाया) 3/1 अनि	= वचन से
अदु	अव्यय	= या
माणसेणं	(माणस) 3/1	= मन से
तत्थेव	[(तत्थ)+(एव)]	
	(तत्थ) अव्यय	= वहाँ
	(एव) अव्यय	= ही
धीरो	(धीर) 1/1 वि	= धीर

---

1. छन्द की मात्रा की पूर्ति हेतु 'इ' को 'ई' किया गया है।
2. वाच्→वाचा→वाया।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पडिसाहरेज्जा	(पडिसाहर) विधि 3/1 सक	= पीछे खींचे
आइण्णो	(आइण्ण) 1/1	= कुलीन घोड़ा
खिप्पमिव	[(खिप्पं)+(इव)]	
	(खिप्पं) अव्यय	= तुरन्त
	(इव) अव्यय	= जैसे
क्खलीणं	(क्खलीण) 2/1	= लगाम को

22.

अप्पा	(अप्प) 1/1	= आत्मा
खलु	अव्यय	= निस्सन्देह
सययं	अव्यय	= सदा
रक्खियव्वो	(रक्ख) विधि-कृ 1/1	= सुरक्षित की जानी चाहिए
सव्विंदिएहिं	[(सव्व)+(इंदिएहिं)]	
	[(सव्व) वि-(इंदिअ) 3/2]	= सभी इन्द्रियों द्वारा
सुसमाहिएहिं	(सु-समाहिअ) 3/2 वि	= पूरी तरह से उपशमित
अरक्खिओ	(अ-रक्खिअ) 1/1 वि	= अरक्षित
जाइपहं	[(जाइ)-(पह) 2/1]	= जन्म-मार्ग की ओर
उवेई[1]	(उवे) व 3/1 सक	= जाती है
सुरक्खिओ	(सुरक्खिअ) 1/1 वि	= सुरक्षित
सव्वदुहाण	[(सव्व)-(दुह)[2] 6/2]	= सब दुःखों से
मुच्चइ	(मुच्चइ) व कर्म 3/1 सक अनि	= छुटकारा पाती है

---

1. छन्द की मात्रा की पूर्ति हेतु 'इ' को 'ई' किया जाता है।
2. कभी-कभी तृतीया के स्थान पर षष्ठी का प्रयोग किया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-134)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ - 4
आचारांग

1.

अहासुतं	अव्यय	= जैसाकि सुना है
वदिस्सामि	(वद) भवि 1/1 सक	= कहूँगा
जहा	अव्यय	= प्रत्यक्ष उक्ति के आरम्भ करते समय प्रयुक्त
से	(त) 1/1 सवि	= वे (वह)
समणे	(समण) 1/1	= श्रमण
भगवं[1]	(भगवन्त→भगवन्तो→भगवं) 1/1	= भगवान
उट्ठाय	(उट्ठ) संकृ	= त्यागकर
संखाए	(संख) संकृ	= जानकर
तंसि	(त) 7/1 सवि	= उस (में)
हेमंते	(हेमंत) 7/1	= हेमन्त में
अहुणा	अव्यय	= इस समय
पव्वइए	(पव्वइअ) भूकृ 1/1 अनि	= दीक्षित हुए
रीइत्था	(री) भू 3/1 सक	= विहार कर गए

2.

अदु	अव्यय	= अब
पोरिसिं[2]	(पोरिसी) 2/1	= प्रहर तक (तीन घण्टे की अवधि)
तिरियभित्तिं[3]	[(तिरिय)–(भित्ति) 2/1]	= तिरछी भीत पर

---

1. अर्धमागधी में 'वाला' अर्थ में 'मन्त' प्रत्यय जोड़ा जाता है। 'म' का विकल्प से 'व' होता है। विकल्प से 'त' का लोप और 'न्' का अनुस्वार हो जाता है। (अभिनव प्राकृत व्याकरण, पृष्ठ 427)

2. कालवाचक शब्दों के योग में द्वितीया होती है।

3. कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण, 3-137)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चक्खुमासज्ज	[(चक्खुं)+(आसज्ज)]	
	चक्खुं (चक्खु) 2/1	= आँखों को
	(आसज्ज) अव्यय	= रखकर या लगाकर
अंतसो	अव्यय	= आन्तरिक रूप से
झाति[1]	(झा) व 3/1 सक	= ध्यान करते हैं→ध्यान करते थे
अह	अव्यय	= तब
चक्खुभीतसहिया	[(चक्खु)–(भीत[2])–(सहिय) 1/2]	= आँखों के डर से युक्त
ते	(त) 1/2 स	= वे
हंता[3]	अव्यय	= यहाँ आओ
हंता[4]	अव्यय	= देखो
बहवे	(बहव) 2/2 वि	= बहुत लोगों को
कंदिंसु[5]	(कंद) भू 3/2 सक	= पुकारते थे
3.		
जे	अव्यय	= पादपूर्ति
केयिमे	[(के)+(य)+(इमे)]	
	के (क) 2/2 वि य (अ) = और	= किन्हीं
	इमे (इम) 1/1 स	= ये
अगारत्था[6]	(अगारत्थ) 2/2 वि	= घर में रहने वालों के स्थानों पर
मीसीभावं	(मीसीभाव) 2/1	= मेलजोल के विचार को
पहाय	(पहा) संकृ	= छोड़कर
से	(त) 1/1 स	= वे (वह)
झाति[1]	(झा) व 3/1 सक	= ध्यान करते हैं→ध्यान करते थे

---

1. भूतकाल की घटनाओं का वर्णन क़रने में वर्तमानकाल का प्रयोग किया जा सकता है।
2. भीत= डर यहाँ 'भीत' नपुंसकलिंग संज्ञा है (विभिन्न कोश देखें)
3-4. 'हंता' शब्द अव्यय है (विभिन्न कोश देखें)
5. 'कंद' का कर्म के साथ अर्थ होगा, 'पुकारना'।
6. सप्तमी के स्थान पर द्वितीया का प्रयोग।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुट्ठो	(पुट्ठ) भूक 1/1 अनि	= पूछी गई
वि	अव्यय	= भी
णाभिभासिंसु	[(ण)+(अभिभासिंसु)]	
	ण (अव्यय)	= नहीं
	अभिभासिंसु (अभिभास) भू 3/1 सक	= बोलते थे
गच्छति	(गच्छ) व 3/1 सक	= चले जाते हैं→चले जाते थे
णाइवत्तती	[(ण)+(अइवत्तती)]	
	ण (अव्यय)	= नहीं
	अइवत्तती[1] (अइवत्त) व 3/1 सक	= उपेक्षा करते थे
अंजू	(अंजु) 1/1 वि	= संयम में तत्पर
4.		
फरिसाइं	(फरिस) 2/2	= कटु वचनों की
दुत्तितिक्खाइं	(दुत्तितिक्ख) 2/2 वि	= दुस्सह
अतिअच्च	(अतिअच्च) संकृ अनि	= अवहेलना करके
मुणी	(मुणि) 1/1	= मुनि
परक्कममाणे	(परक्कम) वकृ 1/1	= पुरुषार्थ करते हुए
आघात-णट्ट-गीताइं[2]	[(आघात)–(णट्ट)–(गीत) 2/2]	कथा, नाच, गान को→ = कथा, नाच, गान में
दंडजुद्धाइं[2]	[(दंड)–(जुद्ध) 2/2]	लाठी युद्ध को→ = लाठी-युद्ध में
मुट्ठिजुद्धाइं[2]	[मुट्ठि–(जुद्ध) 2/2]	मूठी युद्ध को→ = मूठी-युद्ध में
5.		
गढिए	(गढिअ) 2/2 वि	= आसक्त को

---

1. छन्द-मात्रा की पूर्ति हेतु यहाँ ह्रस्व स्वर दीर्घ हुआ है। (पिशल: प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 137-138)
2. कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-137)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मिहु	अव्यय	= परस्पर
कहासु	(कहा) 7/2	= कथाओं में
समयम्मि	(समय) 7/1	= इशारों में
णातसुते	(णातसुत) 1/1	= ज्ञातपुत्र
विसोगे	(विसोग) 1/1 वि	= शोकरहित
अदक्खु	(अदक्खु) भू आर्ष 3/1 सक	= देखते थे
एताइं	(एत) 2/2 सवि	= इन
से	(त) 1/1 सवि	= वे (वह)
उरालाइं	(उराल) 2/2	= मनोहर को
गच्छति	(गच्छ) व 3/1 सक	= करते हैं→करते थे
णायपुत्ते	(णायपुत्त) 1/1	= ज्ञातपुत्र
असरणाए[1]	(असरण) 4/1	= स्मरण नहीं

6.

पुढविं	(पुढवी) 2/1	= पृथ्वीकाय को
च	अव्यय	= और
आउकायं	(आउकाय) 2/1	= जलकाय को
च	अव्यय	= और
तेउकायं	(तेउकाय) 2/1	= अग्निकाय को
च	अव्यय	= और
वायुकायं	(वायुकाय) 2/1	= वायुकाय को
च	अव्यय	= और
पणगाइं	(पणग) 2/2	= शैवाल को
बीयहरियाइं	[(बीय)–(हरिय) 2/2 वि]	= बीज, हरी वनस्पति
तसकायं	(तसकाय) 2/1	= त्रसकाय को
च	अव्यय	= और
सव्वसो	अव्यय	= पूर्णतया
णच्चा	(णच्चा) संकृ अनि	= जानकर

---

1. मार्ग भिन्न गत्यर्थक क्रियाओं के कर्म में द्वितीया या चतुर्थी विभक्ति का प्रयोग होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

7.

एताइ	(एत) 1/2 सवि	= ये
संति	(अस) व 3/2 अक	= हैं
पडिलेहे[1]	(पडिलेह) व 3/1 सक	= देखते हैं→देखा
चित्तमंताइं	(चित्तमंत) 1/2 वि	= चेतनवान
से	(त) 1/1 सवि	= उसने (उन्होंने)
अभिण्णाय	(अभिण्णा) संकृ	= समझकर
परिवज्जियाण	(परिवज्ज) संकृ	= परित्याग करके
विहरित्था	(विहर) भू 3/1 सक	= विहार करते थे
इति	अव्यय	= इस प्रकार
संखाए	(संखा) संकृ	= जानकर
से	(त) 1/1 स	= वह (वे)
महावीरे	(महावीर) 1/1	= महावीर

8.

मातण्णे	(मातण्ण) 1/1 वि	= मात्रा को समझनेवाले
असणपाणस्स	[(असण)–(पाण) 6/1]	= खाने-पीने की
णाणुगिद्धे	[(ण)+(अणुगिद्धे)]	
	ण (अव्यय)	= नहीं
	अणुगिद्धे (अणुगिद्ध) 1/1 वि	= लालायित
रसेसु	(रस) 7/2	= रसो में
अपडिण्णे	(अपडिण्ण) 1/1 वि	= निश्चय नहीं
अच्छि	(अच्छि) 2/1	= आँख को
पि	अव्यय	= भी
णो	अव्यय	= नहीं
पमज्जिया	(पमज्ज) संकृ	= पोंछकर
णो	अव्यय	= नहीं
वि	अव्यय	= भी

---

1. भूतकाल की घटनाओं का वर्णन करने में वर्तमानकाल का प्रयोग किया जा सकता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

य	अव्यय	= और
कंडुयए	(कंडुय) व 3/1 सक	= खुजलाते हैं→ खुजलाते थे
मुणी	(मुणि) 1/1	= मुनि
गातं	(गात) 2/1	= शरीर को

9.

अप्पं	अव्यय	= नहीं
तिरियं	(तिरिय) 2/1	= तिरछे
पेहाए	(पेह) संकृ	= देखकर
अप्पं	अव्यय	= नहीं
पिट्ठओ	अव्यय	= पीछे की ओर
उप्पेहाए	(उप्पेह) संकृ	= देखकर
अप्पं	अव्यय	= नहीं
बुइए	(बुइअ) भूकृ 7/1 अनि	= संबोधित किए गए होने पर
पडिभाणी	(पडिभाणि) 1/1 वि	= उत्तर देनेवाले
पथपेही	[(पथ)–(पेहि) 1/1 वि]	= मार्ग को देखनेवाले
चरे	(चर) व 3/1 सक	= गमन करते हैं→ गमन करते थे
जतमाणे	(जत) वकृ 1/1	= सावधानी बरतते हुए

10.

आवेसण-सभा-पवासु	[(आवेसण)–(सभा)–(पवा) 7/2]	= शून्य घरों में, सभा भवनों में
पणियसालासु	(पणियसाल) 7/2	= दुकानों में
एगदा	अव्यय	= कभी
वासो	(वास) 1/1	= रहना
अदुवा	अव्यय	= अथवा
पलियट्ठाणेसु	(पलियट्ठाण) 7/2	= कर्म-स्थानों में
पलालपुजेसु	[(पलाल)–(पुंज) 7/2]	= घास-समूह में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एगदा	अव्यय	= कभी
वासो	(वास) 1/1	= ठहरना
11.		
आगंतारे	(आगंतार) 7/1	= मुसाफिर खाने में
आरामागारे	[(आराम)+(आगार)] [(आराम)–(आगार) 7/1]	= बगीचे में (बने हुए) स्थान में
नगरे	(नगर) 7/1	= नगर में
वि	अव्यय	= भी
एगदा	अव्यय	= कभी
वासो	(वास) 1/1	= रहना
सुसाणे	(सुसाण) 7/1	= मसाण में
सुण्णगारे	[(सुण्ण)+(अगारे)] [(सुण्ण)–(अगार) 7/1]	= सूने घर में
वा	अव्यय	= तथा
रुक्खमूले	[(रुक्ख)–(मूल) 7/1]	= पेड़ के नीचे के भाग में
वि	अव्यय	= भी
एगदा	अव्यय	= कभी
वासो	(वास) 1/1	= रहना
12.		
एतेहिं[1]	(एत) 3/2 सवि	= इनमें
मुणी	(मुणि) 1/1	= मुनि
सयणेहिं[1]	(सयण) 3/2	= स्थानों में
समणे	(स-मण) 1/1 वि	= समता युक्त मनवाले
आसि[2]	(अस) भू 3/1 अक	= रहे

कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर तृतीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-137)

आसी अथवा आसि, सभी-पुरुषों और वचनों में भूतकाल में काम में आता है।

(पिशल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 749)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पतेलस[1]	(पतेलस) मूलशब्द 7/1 वि	= तेरहवें
वासे	(वास) 7/1	= वर्ष में
राइंदिवं[2]	क्रिविअ	= रात-दिन
पि	अव्यय	= ही
जयमाणे	(जय) वकृ 1/1	= सावधानी बरतते हुए
अप्पमत्ते	(अप्पमत्त) 7/1 वि	= अप्रमादयुक्त
समाहिते	(समाहित) 7/1 वि	= एकाग्र (अवस्था) में
झाती[3]	(झा) व 3/1 सक	= ध्यान करते हैं→ ध्यान करते थे

13.

णिद्दं	(णिद्दा) 2/1	= नींद को (का)
पि	अव्यय	= कभी भी
णो	अव्यय	= नहीं
पगामाए	(पगाम) 4/1	= आनन्द के लिए
सेवइ	(सेव) व 3/1 सक	= उपभोग करते हैं→ उपभोग करते थे
या=जा=जाव	अव्यय	= ठीक उसी समय
भगवं	(भगवन्त→भगवन्तो→भगवं) 1/1	= भगवान
उट्ठाए	(उट्ठ) संकृ	= खड़ा करके
जग्गावतीय	[(जग्गावति)+(इय)] (जग्ग→जग्गाव) प्रे व 3/1 सक.	= जगा लेते हैं→ जगा लेते थे
	इय (अव्यय)	= और
अप्पाणं	(अप्पाण) 2/1	= अपने को

---

1. किसी भी कारक के लिए मूलशब्द (संज्ञा) काम में लाया जाता है। (मेरे विचार से यह नियम विशेषण पर भी लागू किया जा सकता है)
   (पिशल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 517)
2. राइंदिवं– यह नपुंसकलिंग है। (Eng. Dictionary, Monier Williams) इससे क्रिया-विशेषण अव्यय बनाया जा सकता है। (राइंदिवं)
3. छन्द की मात्रा की पूर्ति हेतु 'ति' को 'ती' किया गया है।
   (पिशल: प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 137-138)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ईसिं	अव्यय	= थोड़ा सा
साई	(साइ) 1/1 वि	= सोनेवाले
य	अव्यय	= बिल्कुल
अपडिण्णे	(अपडिण्ण) 1/1 वि	= इच्छारहित

14.

संबुज्झमाणे	(संबुज्झ) वकृ 1/1	= पूर्णत: जागते हुए
पुणरवि	अव्यय	= फिर
आसिंसु	(आस) भू 3/1 अक	= बैठ जाते थे
भगवं	(भगवं) 1/1	= भगवान
उट्ठाए	(उट्ठ) संकृ	= सक्रिय होकर
णिक्खम्म	(णिक्खम्म) संकृ अनि	= बाहर निकलकर
एगया	अव्यय	= कभी-कभी
राओ	अव्यय	= रात में
बहिं	अव्यय	= बाहर
चक्कमिया[1]	(चक्कम) संकृ	= इधर-उधर घूमकर
मुहुत्तागं[2]	(मुहुत्ताग) 2/1	= कुछ समय तक

15.

सयणेहिं[3]	(सयण) 3/2	= स्थानों में
तस्सुवसग्गा	[(तस्स)+(उवसग्गा)]	
	तस्स (त) 4/1 स.	
	उवसग्गा (उवसग्ग) 1/2	= उनके लिये, कष्ट
भीमा	(भीम) 1/2 वि	= भयानक
आसी[4]	(अस) भू 3/2 अक	= (वर्तमान) थे

---

1. पिशल: प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 834
2. समयबोधक शब्दों में द्वितीया होती है।
3. कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर तृतीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-137)
4. 'आसी' अथवा 'आसि' सभी पुरुषों और वचनों में भूतकाल में काम आता है। (पिशल: प्राकृत भाषाओं का व्याकरण पृष्ठ 749)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अणेगरूवा	(अणेगरूव) 1/2 वि	= नाना प्रकार के
य	अव्यय	= भी
संसप्पगा	(संसप्पग) 1/2 वि	= चलने-फिरने वाले
य	अव्यय	= भी
जे	(ज) 1/2 सवि	= जो
पाणा	(पाण) 1/2	= जीव
अदुवा	अव्यय	= और
पक्खिणो	(पक्खि) 1/2	= पंखयुक्त
उवचरंति	(उवचर) व 3/2 सक	= उपद्रव करते हैं→ उपद्रव करते थे

16.

इहलोइयाइं	(इहलोइय) 2/2 वि	= इस लोक सम्बन्धी
परलोइयाइं	(परलोइय) 2/2 वि	= परलोक सम्बन्धी
भीमाइं	(भीम) 2/2 वि	= भयानक को
अणेगरूवाइं	(अणेगरूव) 2/2 वि	= नाना प्रकार के
अवि	अव्यय	= और
सुब्भिदुब्भि-गंधाइं[1]	[(सुब्भि) वि–(दुब्भि) वि–(गंध) 2/2]	= रुचिकर और अरुचिकर गन्धों में
सद्दाइं[1]	(सद्द) 2/2	= शब्दों में
अणेगरूवाइं[1]	(अणेगरूव) 2/2 वि	= नाना प्रकार के

17.

अधियासए	(अधियास) व 3/1 सक	= झेलता है→झेला
सया	अव्यय	= सदा
समिते	(समित) 1/1 वि	= समतायुक्त
फासाइं	(फास) 2/2	= कष्टों को
विरूवरूवाइं	(विरूवरूव) 2/2 वि	= अनेक प्रकार के
अरतिं	(अरति) 2/1 वि	= शोक को

1. कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-137)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रतिं	(रति) 2/1 वि	= हर्ष को
अभिभूय	(अभि-भू) संकृ	= विजय प्राप्त करके
रीयति[1]	(री) व 3/1 सक	= गमन करते हैं→ गमन करते रहे
माहणे	(माहण) 1/1 वि	= अहिंसक
अबहुवादी	[(अ-बहु) वि–(वादि) 1/1 वि]	= बहुत न बोलनेवाले
18.		
लाढेहिं[2]	(लाढ) 3/2	= लाढ़ देश में
तस्सुवसग्गा	[(तस्स)+(उवसग्गा)] तस्स (त) 4/1 स उवसग्गा (उवसग्ग) 2/2	= उनके लिए, कष्ट
बहवे	(बहव) 2/2 वि	= बहुत
जाणवया	(जाणवय) 1/2	= रहनेवाले लोगों ने
लूसिंसु	(लूस) भू 3/2 सक	= हैरान किया
अह	अव्यय	= उसी तरह
लूहदेसिए	[(लूह)–(देसिअ) 1/1 वि]	= रूखे, निवासी
भत्ते	(भत्त) भूकृ 1/1 अनि	= पकाया हुआ भोजन
कुक्कुरा	(कुक्कुर) 1/2	= कुत्ते
तत्थ	अव्यय	= वहाँ पर
हिंसिंसु	(हिंस) भू 3/2 सक	= सन्ताप देते थे
णिवतिंसु	(णिवत) भू 3/1 सक	= टूट पड़ते थे
19.		
अप्पे	(अप्प) 1/1 वि	= कुछ
जणे	(जण) 1/1	= लोग
णिवारेति	(णिवार) व 3/1 सक	= दूर हटाते हैं– दूर हटाते थे
लूसणए	(लूसणअ) 2/2 वि 'अ' स्वार्थिक	= हैरान करनेवाले को.

1. अकारान्त धातुओं के अतिरिक्त अन्य स्वरान्त धातुओं में विकल्प से 'अ' या 'य' जोड़ने के पश्चात् विभक्ति चिह्न जोड़ा जाता है।
2. देशों के नाम प्राय: बहुवचन में होते हैं। कभी-कभी सप्तमी के स्थान पर तृतीया विभक्ति का प्रयोग होता है। (हेम प्राकृत व्याकरण 3-137)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुणए	(सुणअ) 2/2	= कुत्तों को
डसमाणे	(डसमाण) 2/2	= काटते हुए
छुच्छुकरेंति	(छुच्छुकर) व 3/2 सक	= छु-छु की आवाज करते हैं→ छु-छु की आवाज *करते थे*
आहंसु	(आह) भू 3/2 सक	= बुला लेते थे
समणं[1]	(समण) 2/1	= महावीर के (पीछे)
कुक्कुरा	(कुक्कुर) 2/2	= कुत्तों को
दसंतु[2]	(दस) विधि 3/2 अक	= थक जाएँ
त्ति	अव्यय	= जिससे

20.

हतपुव्वो	(हतपुव्व) 1/1 वि	= पहले प्रहार किया गया
तत्थ	अव्यय	= वहाँ
डंडेण	(डंड) 3/1	= लाठी से
अदुवा	अव्यय	= अथवा
मुट्ठिणा	(मुट्ठि) 3/1	= मुक्के से
अदु	अव्यय	= अथवा
फलेणं	(फल) 3/1	= चाकू, तलवार, भाला आदि से
अदु	अव्यय	= अथवा
लेलुणा	(लेलु) 3/1	= ईंट, पत्थर आदि के टुकड़े से
कवालेणं	(कवाल) 3/1	= ठीकरे से
हंता	अव्यय	= आओ
हंता	अव्यय	= देखो
बहवे	(बहव) 2/2 वि	= बहुतों को

---

1. 'पीछे' के योग में द्वितीया होती है।
2. दस = (To become exhausted (English Dictionary by Monier Williams, P. 473 Col. I) सम्मान प्रदर्शित करने में बहुवचन का प्रयोग हुआ है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कंदिंसु	(कंद) भू 3/2 सक	= पुकारते थे
21.		
सूरो	(सूर) 1/1 वि	= योद्धा
संगामसीसे	[(संगाम)–(सीस) 7/1]	= संग्राम के मोर्चे पर
वा	अव्यय	= जैसे
संवुडे	(संवुड) भूकृ 1/1 अनि	= ढका हुआ
तत्थ	अव्यय	= वहाँ
से	(त) 1/1 सवि	= वे
महावीरे	(महावीर) 1/1	= महावीर
पडिसेवमाणो	(पडिसेव) वकृ 1/1	= सहते हुए
फरुसाइं	(फरुस) 2/2 वि	= कठोर को
अचले	(अचल) 1/1 वि	= अस्थिरता-रहित
भगवं	(भगवन्त→भगवन्तो→भगवं) 1/1	= भगवान
रीयित्था	(री)[1] भू 3/1 सक	= विहार करते थे
22.		
अवि	अव्यय	= और
साहिए[2]	(साहिअ) 2/2 वि	= अधिक
दुवे[2]	(दुव) 2/2 वि	= दो
मासे[2]	(मास) 2/2	= मास तक
छप्पि	[(छ)+(अप्पि)] छ (छ) 2/2 अपि (अव्यय)	= छः, भी
मासे[2]	(मास) 2/2	= मास तक
अदुवा	अव्यय	= अथवा
अपिवित्था	(अपिव) भू 3/1 सक	= नहीं पीते थे

---

1. अकारान्त धातुओं के अतिरिक्त अन्य स्वरान्त धातुओं में विकल्प से 'अ' या 'य' जोड़ने के पश्चात् विभक्ति चिह्न जोड़ा जाता है।
2. कभी-कभी सप्तमी विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-137) और समय बोधक शब्दों में सप्तमी होती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

राओवरातं	[(राअ)+(उवरातं)] [(राअ)–(उवरात) 2/1]	= रात में, दिन को→ दिन में
अपडिण्णे	(अपडिण्ण) 1/1 वि	= राग-द्वेष-रहित
अण्णगिला-	[(अण्ण)+(गिलायं)+(एगता)]	
यमेगता	[(अण्ण)–(गिलाय) 2/1]	= भोजन, बासी को
	एगता (अव्यय)	= कभी-कभी
भुंजे	(भुंज) व 3/1 सक	= खाता है→खाया

23.

छट्ठेण[1]	(छट्ठ) 3/1	= दो दिन के उपवास के बाद में
एगया	अव्यय	= कभी
भुंजे	(भुंज) व 3/1 सक	= भोजन करते हैं→ भोजन करते थे
अदुवा	अव्यय	= अथवा
अट्ठमेण[1]	(अट्ठम) 3/1	= तीन दिन के उपवास के बाद में
दसमेण[1]	(दसम) 3/1	= चार दिन के उपवास के बाद में
दुवालसमेण[1]	(दुवालसम) 3/1	= पाँच दिन के उपवास के बाद में
एगदा	अव्यय	= कभी
भुंजे	(भुंज) व 3/1 सक	= भोजन करते हैं→ भोजन करते थे
पेहमाणे	(पेह) वकृ 1/1	= देखते हुए
समाहिं	(समाहि) 2/1	= समाधि को
अपडिण्णे	(अपडिण्ण) 1/1 वि	= निष्काम

---

1. कभी-कभी पंचमी विभक्ति के स्थान पर तृतीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण : 3-136) यहाँ 'बाद में' अर्थ लुप्त है, तथा 'बाद में' अर्थ के योग में पंचमी होती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

24.

णच्चाण[1]	(णा) संकृ	= जानकर
से	(त) 1/1 सवि	= वे
महावीरे	(महावीर) 1/1	= महावीर
णो	अव्यय	= नहीं
वि	अव्यय	= भी
य	अव्यय	= बिल्कुल
पावगं	(पावग) 2/1	= पाप (को)
सयमकासी	[(सयं)+(अकासी)]	
	सयं (अव्यय)	= स्वयं
	अकासी (अकासी) भू आर्ष 3/1 सक	= करते थे
अण्णेहिं	(अण्ण) 3/2 वि	= दूसरों से
वि	अव्यय	= भी
ण	अव्यय	= नहीं
कारित्था	(कर→कार) प्रे भू 3/1 सक	= करवाते थे
कीरंतं	(कीरंत) वकृ कर्म 2/1 अनि	= किए जाते हुए
पि	अव्यय	= भी
णाणुजाणित्था	[(ण)+(अणुजाणित्था)]	
	ण (अव्यय)	= नहीं
	अणुजाणित्था (अणुजाण) भू 3/1 सक	अनुमोदन करते थे

25.

गामं	(गाम) 2/1	= गाँव
पविस्स[2]	(पविस्स) संकृ अनि	= प्रवेश करके
णगरं	(णगर) 2/1	= नगरे को→ में
वा	अव्यय	= या

---

1. पिशल: प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ, 830
2. 'गमन' अर्थ के साथ द्वितीया विभक्ति का प्रयोग होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

घासमेसे	[(घासं)+(एसे)]	
	घासं (घास) 2/1	= आहार को, भिक्षा ग्रहण
	एसे (एस) व 3/1 सक	करता है→ करते थे
कडं	(कड) भूकृ 2/1 अनि	= बने हुए
परट्ठाए	(परट्ठ) 4/1	= दूसरे के लिए
सुविसुद्धमेसिया	[(सुविसुद्धं)+(एसिया)]	
	सुविसुद्धं (सुविसुद्ध) 2/1 वि	= सुविशुद्ध,
	एसिया[1] (एस) संकृ	भिक्षा ग्रहण करके
भगवं	(भगवं) 1/1	= भगवान
आयतजोगताए	[(आयत) वि–(जोगता) 3/1]	= संयत, योगत्व से
सेवित्था	(सेव) भू 3/1 सक	= उपयोग में लाते थे
26.		
अकसायी	(अकसायि) 1/1 वि	= कषाय-रहित
विगतगेही	[(विगत) भूकृ अनि–(गेहि) 1/1]	= लोलुपता नष्ट कर दी गई
य	अव्यय	= और
सद्द-	[(सद्द)+(रूवेसु)+(अमुच्छिते)]	
रूवेसुऽमुच्छिते	[(सद्द)–(रूव) 7/2]	= शब्दों, रूपों में
	अमुच्छिते (अमुच्छित) 1/1 वि	अनासक्त
झाती[2]	(झा) व 3/1 सक	= ध्यान करते हैं→ ध्यान करते थे
छउमत्थे	(छउमत्थ) 1/1 वि	= असर्वज्ञ
वि	अव्यय	= भी
विप्परक्कममाणे	(विप्परक्कम) वकृ 1/1	= साहस के साथ करते हुए
ण	अव्यय	= नहीं
पमायं	(पमाय) 2/1	= प्रमाद (को)
सइं	अव्यय	= एकबार
पि	अव्यय	= भी

---

1. पिशल: प्राकृत भाषाओं का व्याकरण : पृष्ठ, 834
2. छन्द की मात्रा की पूर्ति हेतु 'ति' को 'ती' किया गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कुव्वित्था	(कुव्व) भू 3/1 सक	= किया

27.

सयमेव	[(सयं)+(एव)]	
	सयं (अव्यय)	= स्वयं
	एव (अव्यय)	= ही
अभिसमागम्म	(अभिसमागम्म) संकृ अनि	= प्राप्त करके
आयतजोगमाय-सोहीए	[(आयत)+(जोगं)+(आय)+(सोहीए)]	
	[(आयत) वि–(जोग) 2/1]	= संयत, प्रवृत्ति को,
	[(आय)–(सोहि) 3/1]	= आत्म-शुद्धि के द्वारा
अभिणिव्वुडे	(अभिणिव्वुड) 1/1 वि	= शान्त
अमाइल्ले	(अमाइल्ल) 1/1 वि	= सरल
आवकहं	अव्यय	= जीवनपर्यन्त
भगवं	(भगवं) 1/1	= भगवान
समितासी	[(समित)+(आसी)]	
	समित[1] (समित) मूल शब्द 1/1	= समतायुक्त
	आसी[2] (अस) भू 3/1 अक	= रहे

---

1. किसी भी कारक के लिए मूल संज्ञा शब्द काम में लाया जा सकता है। (पिशलः प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ, 517) मेरे विचार से यह नियम विशेषण पर भी लागू किया जा सकता है।
2. आसी अथवा आसि सभी पुरुषों और वचनों में भूतकाल में काम आता है। (देखें गाथा 12)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ - 5

प्रवचनसार

1.

चारित्तं	(चारित्त) 1/1	= चारित्र
खलु	अव्यय	= निश्चय ही
धम्मो	(धम्म) 1/1	= धर्म
धम्मो	(धम्म) 1/1	= धर्म
जो	(ज) 1/1 सवि	= जो
सो	(त) 1/1 सवि	= वह
समो	(सम) 1/1	= समता
त्ति	अव्यय	= ही
णिद्दिट्ठो	(णिद्दिट्ठ) भूकृ 1/1 अनि	= कहा गया है
मोहक्खोहविहीणो	[(मोह)-(क्खोह)-(विहीण) भूकृ 1/1 अनि]	= मूर्च्छा और व्याकुलतारहित
परिणामो	(परिणाम) 1/1	= भाव
अप्पणो	(अप्प) 6/1	= आत्मा का
हु	अव्यय	= ही
समो	(सम) 1/1	= समता

2.

अइसयमादसमुत्थं	[(अइसयं)+(आद)+(समुत्थं)]	
	(अइसय) 1/1 **वि**	= श्रेष्ठ
	[(आद)-(समुत्थ)] 1/1 वि	= आत्मा से उत्पन्न
विसयातीदं	[(विसय)+(अतीदं)]	= इन्द्रिय-विषयों
	[(विसय)-(अतीद) 1/1 वि]	से परे
अणोवममणंतं	[(अणोवमं)+(अणंतं)]	
	(अणोवम) 1/1 वि	= अनुपम
	(अणंत) 1/1 वि	= अनन्त
अव्वुच्छिण्णं	(अव्वुच्छिण्ण) 1/1 वि	= सतत
च	अव्यय	= और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुहं	(सुह) 1/1	= सुख
सुद्धुवओगप्प-सिद्धाणं	[(सुद्ध)+(उवओग)+(प्पसिद्धाणं)] [(सुद्ध) वि-(उवओग)-(प्पसिद्ध) 6/2 वि]	= शुद्धोपयोग से विभूषित (जीवों) का

3.

सोक्खं	(सोक्ख) 1/1	= सुख
वा	अव्यय	= तथा
पुण	अव्यय	= पादपूर्ति
दुक्खं	(दुक्ख) 1/1	= दुःख
केवलणाणिस्स	(केवलणाणि) 6/1	= केवलज्ञानी के
णत्थि	अव्यय	= नहीं है
देहगदं	[(देह)-(गद) भूकृ 1/1 अनि]	= देह विषयक
जम्हा	अव्यय	= चूँकि
अदिंदियत्तं	(अदिंदियत्त) 1/1	= अतींद्रियता
जादं	(जाद्र) भूकृ 1/1 अनि	= उत्पन्न हुई है
तम्हा	अव्यय	= इसलिये
दु	अव्यय	= ही
तं	(त) 1/1 सवि	= वह
णेयं	(णेय) विधि कृ 1/1 अनि	= समझने योग्य

4.

णाणं	(णाण) 1/1	= ज्ञान
अप्पं	(अप्प→अप्पा) 1/1	= आत्मा
त्ति	अव्यय	= इस प्रकार
मदं	(मद) भूकृ 1/1 अनि	= कहा गया (है)
वट्टदि	(वट्ट) व 3/1 अक	= रहता है
णाणं	(णाण) 1/1	= ज्ञान
विणा	अव्यय	= बिना
ण	अव्यय	= नहीं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अप्पांणं[1]	(अप्पाण) 2/1	= आत्मा के
तम्हा	अव्यय	= इसलिये
णाणं	(णाण) 1/1	= ज्ञान
अप्पा	(अप्प) 1/1	= आत्मा
अप्पा	(अप्प) 1/1	= आत्मा
णाणं	(णाण) 1/1	= ज्ञान
व	अव्यय	= तथा
अण्णं	(अण्ण) 1/1 वि	= अन्य
वा	अव्यय	= भी

5.

ठाणणिसेज्जविहारा	[(ठाण)-(णिसेज्ज)-(विहार) 1/2]	= खड़ा होना, बैठना और गमन
धम्मुवदेसो	[(धम्म)+(उवदेसो)] [(धम्म)-(उवदेस) 1/1]	= धर्म का उपदेश (धर्मोपदेश)
य	अव्यय	= और
णियदयो	(णियद) भूकृ 1/1 अनि य. स्वार्थिक	= स्थिर
तेसिं	(त) 6/2 सवि	= उनका
अरहंताणं	(अरहंत) 6/2	= अरिहन्तों के
काले	(काल) 7/1	= (उस) समय में
मायाचारो	(मायाचार) 1/1	= मातारूप आचरण
व्व	अव्यय	= की तरह
इत्थीणं	(इत्थी) 6/2	= स्त्रियों के

6.

तिमिरहरा	[(तिमिर)-(हर (स्त्री)→हरा) 1/1]	= अन्धकार को हरनेवाली
जइ	अव्यय	= यदि
दिट्ठी	(दिट्ठि) 1/1	= आँख
जणस्स	(जण) 6/1	= मनुष्य की
दीवेण	(दीव) 3/1	= दीपक के द्वारा

---

1. 'बिना' के योग में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णत्थि	अव्यय	= नहीं
कायव्वं	(कायव्व) विधि 1/1 अनि	= करने योग्य
तह	अव्यय	= उसी प्रकार
सोक्खं	(सोक्ख) 1/1	= सुख
सयमादा	[(सयं)+(आदा)]	
	सयं (अव्यय)	= स्वयं (आप)
	आदा (आद) 1/1	= आत्मा
विसया	(विसय) 1/2	= इन्द्रिय-विषय
किं	(क) 1/1 सवि	= क्या
तत्थ	अव्यय	= वहाँ
कुव्वंति	(कुव्व) व 3/2 सक	= उत्पन्न करते हैं

7.

सयमेव	[(सयं)+(एव)]	
	सयं (अव्यय)	= स्वयं
	एव (अव्यय)	= ही
जहादिच्चो	[(जह)+(आदिच्चो)]	
	जह (अव्यय)	= जिस प्रकार
	आदिच्चो (आदिच्च) 1/1	= सूर्य
तेजो	(तेज) 1/1	= प्रकाशरूप
उण्हो	(उण्ह) 1/1	= ऊष्णरूप
य	अव्यय	= और
देवदा	(देवदा) 1/1	= दिव्यरूप
णभसि	(णभसि) 7/1 अनि	= आकाश में
सिद्धो	(सिद्ध) 1/1	= सिद्ध
वि	अव्यय	= भी
तहा	अव्यय	= उसी प्रकार
णाणं	(णाण) 1/1	= ज्ञानरूप
सुहं	(सुह) 1/1	= सुखरूप
च	अव्यय	= और

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लोगे	(लोग) 7/1	= लोक में (इस जगत में)
तहा	अव्यय	= वैसे ही
देवो	(देव) 1/1 वि	= दिव्यरूप

8.

देवदजदिगुरुपूजासु	[(देवद)-(जदि)-(गुरु)-(पूजा) 7/2]	= देव, संन्यासी और गुरु की आराधना में
चेव	अव्यय	= और
दाणम्मि	(दाण) 7/1	= दान में
वा	अव्यय	= तथा
सुसीलेसु	(सुसील) 7/2	= व्रतों में
उववासादिसु	(उववासादि) 7/2	= उपवासादि में
रत्तो	(रत्त) भूकृ 1/1 अनि	= अनुरक्त
सुहोवओगप्पगो	[(सुह)-(उवओगप्पग) 1/1 वि]	= शुभ उपयोगस्वभाववाला
अप्पा	(अप्प) 1/1	= व्यक्ति

9.

सपरं	[(स) अ–(परं)]	
	(स) अव्यय	= सहित
	परं–(पर) 1/1 वि	= दूसरे (की अपेक्षा)
बाधासहियं	[(बाधा)-(सहिय) 1/1 वि]	= बाधायुक्त
विछिण्णं	(विछिण्ण) भूकृ 1/1 वि	= नाशवान
बंधकारणं	[(बंध)-(कारण) 1/1]	= कर्मबन्ध का कारण
विसमं	(विसम) 1/1 वि	= असमान
जं	(ज) 1/1 सवि	= जो
इंदियेहिं	(इंदिय) 3/2	= इन्द्रियों से
लद्धं	(लद्ध) भूकृ 1/1 अनि	= प्राप्त
तं	(त) 1/1 सवि	= वह
सोक्खं	(सोक्ख) 1/1	= सुख
दुक्खमेव	[(दुक्खं)+(एव)]	
	दुक्खं (दुक्ख) 1/1	= दुःख
	एव (अव्यय)	= ही

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तहा	अव्यय	= तथा
10.		
आदा	(आद) 1/1	= आत्मा
कम्ममलिमसो	[(कम्म)-(मलिमस) 1/1 वि]	= कर्म से मलिन
धरेदि	(धर) व 3/1 सक	= धारण करता है
पाणे	(पाण) 2/2	= जीवन को
पुणो पुणो	अव्यय	= बार-बार
अण्णे	(अण्ण) 2/2 वि	= दूसरे
ण	अव्यय	= नहीं
चयदि	(चय) व 3/1 सक	= छोड़ता है
जाव	अव्यय	= जब तक
ममत्तं	(ममत्त) 2/1	= ममत्व
देहपधाणेसु	[(देह)-(पधाण) 7/2 वि]	= देह मूलवाले
विसयेसु	(विसय) 7/2	= विषयों में
11.		
जो	(ज) 1/1 सवि	= जो
जाणादि	(जाण) व 3/1 सक	= जानता है
जिणिंदे	(जिणिंद) 2/2	= जितेन्द्रियों को
पेच्छदि	(पेच्छ) व 3/1 सक	= समझता है
सिद्धे	(सिद्ध) 2/2	= सिद्धों को
तहेव	अव्यय	= उसी प्रकार
अणगारे	(अणगार) 2/2	= साधुओं को
जीवेसु	(जीव) 7/2	= जीवों में
साणुकंपो	[(स)-(अणुकंप) 1/1]	= अनुकम्पा (करुणा) सहित
उवओगो	(उवओग) 1/1	= उपयोग
सो	(त) 1/1 सवि	= वह
सुहो	(सुह) 1/1 वि	= शुभ
तस्स	(त) 6/1 स	= उसका

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

12.

रत्तो	(रत्त) भूकृ 1/1 अनि	= रागी
बंधदि	(बंध) व 3/1 सक	= बाँधता है
कम्मं	(कम्म) 2/1	= कर्म को
मुच्चदि	(मुच्चदि) व कर्म 3/1 सक अनि	= छुटकारा पाता है
कम्मेहिं	(कम्म) 3/2	= कर्मों से
रागरहिदप्पा	[(रागरहिद)+(अप्पा)] [(रागरहिद)-(अप्प) 1/1]	= रागरहित आत्मा
एसो	(एस) 1/1 सवि	= यह
बंधसमासो	[(बंध)-(समास) 1/1]	= बन्ध का संक्षेप
जीवाणं	(जीव) 6/2	= जीवों के
जाण	(जाण) विधि 2/1 सक	= जानो
णिच्छयदो क्रिविअ		= निश्चय से

13.

देहा	(देह) 1/2	= शरीर (देह)
वा	अव्यय	= या
दविणा	(दविण) 1/2	= सम्पत्ति
वा	अव्यय	= या
सुहदुक्खा	[(सुह)-(दुक्ख) 1/2]	= सुख-दुःख
वाध	[(वा)+(अध)] (वा) अव्यय (अध) अव्यय	 = या = इसी प्रकार
सत्तुमित्तजणा	[(सत्तु)-(मित्त)-(जण) 1/2]	= शत्रुजन, मित्रजन (व्यक्ति)
जीवस्स	(जीव) 4/1	= आत्मा के लिये
ण	अव्यय	= नहीं
संति	(अस) व 3/2 अक	= हैं
धुवा	(धुव) 1/2 वि	= स्थायी
धुवोवओगप्पगो	[(धुव)+(उवओग)+(अप्पगो)] [(धुव)-(उवओग)-(अप्पग) 1/1]	= स्थायी और ज्ञानस्वरूप

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अप्पा	(अप्प) 1/1	= आत्मा
14.		
जो	(ज) 1/1 सवि	= जो
एवं	अव्यय	= इस प्रकार
जाणित्ता	(जाण) संकृ	= जानकर
झादि	(झा) व 3/1 सक	= ध्यान करता है
परं	(पर) 2/1 वि	= सर्वोत्तम
अप्पगं	(अप्पग) 2/1	= आत्मा को
विसुद्धप्पा	[(विसुद्ध) वि- (अप्प) 1/1]	= शुद्ध आत्मा
सागारोऽणागारो	[(सागारो)+(अणागारो)]	
	(सागार) 1/1	= गृहस्थ तथा
	(अणागार) 1/1	मुनि
खवेदि	(खव) व 3/1 सक	= नष्ट कर देता है
सो	(त) 1/1 सवि	= वह
मोहदुग्गंठिं	[(मोह)-(दुग्गंठि) 2/1]	= आसक्ति की गाँठ को
15.		
जो	(ज) 1/1 सवि	= जो
खविदमोहकलुसो	[(खविद) भूकृ-(मोह)-(कलुस) 1/1]	= नष्ट कर दिया गया है, आसक्ति रूपी, मैल
विसयविरत्तो	[(विसय)-(विरत्त) भूकृ 1/1]	= विषयों से विरक्त
मणो	(मण) 1/1	= मन
णिरुंभित्ता	(णिरुंभ) संकृ	= रोककर
समवट्ठिदो	(समवट्ठिद) भूकृ 1/1 अनि	= भली प्रकार से अवस्थित
सहावे	(सहाव) 7/1	= स्वभाव में
सो	(त) 1/1 सवि	= वह
अप्पाणं	(अप्पाण) 2/1	= निज को
हवदि	(हव) व 3/1 अक	= होता है
झादा	(झाउ→झाता→झादा) 1/1 वि	= ध्यान करनेवाला

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ - 6
भगवती अराधना

1.

दुज्जणसंसग्गीए	[(दुज्जण) वि-(संसग्ग→संसग्गी) 3/1]	= दुर्जन के संसर्ग से
पजहदि	(पजह) व 3/1 सक	= त्याग देता है
णियगं	(णियग) 2/1 वि	= अपने
गुणं	(गुण) 2/1	= गुण को
खु	अव्यय	= निश्चित रूप से
सुजणो	(सुजण) 1/1	= सज्जन
वि	अव्यय	= भी
सीयलभावं	[(सीयल) वि- (भाव) 2/1]	= शीतल स्वभाव को
उदयं	(उदय) 1/1	= पानी
जह	अव्यय	= जैसे
पजहदि	(पजह) व 3/1 सक	= त्याग देता है
अग्गिजोएण	[(अग्गि)-(जोअ) 3/1]	= अग्नि के योग से

2.

णाणुज्जोवो	[(णाण)+(उज्जोवो)]	
	[(णाण)-(उज्जोव) 1/1]	= ज्ञान रूपी प्रकाश
जोवो	(जोव) 1/1	= प्रकाश (है)
णाणुज्जोवस्स	[(णाण)+(उज्जोवस्स)]	
	[(णाण)-(उज्जोव) 6/1]	= ज्ञान रूपी प्रकाश का
णत्थि	[(ण)+(अत्थि)] ण (अव्यय)	= नहीं
	अत्थि (अस) व 3/1 अक	= है
पडिघादो	(पडिघाद) 1/1	= विनाश
दीवेइ	(दीव) व 3/1 सक	= प्रकाशित करता है
खेत्तमप्पं	[(खेत्तं)+(अप्पं)] खेत्तं (खेत्त) 2/1	= क्षेत्र को
	अप्पं (अप्प) 2/1 वि	= अल्प
सूरो	(सूर) 1/1	= सूर्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

णाणं	(णाण) 1/1	= ज्ञान
जगमसेसं	[(जगं)+(असेसं)] जगं (जग) 2/1	= विश्व को
	असेसं (असेस) 2/1 वि	= समस्त
3.		
विज्जा	(विज्जा) 1/1	= विद्या
वि	अव्यय	= भी
भत्तिवंतस्स	(भत्तिवंत) 6/1	= भक्तिवान की
सिद्धिमुवयादि	[(सिद्धिं)+(उवयादि)] सिद्धिं (सिद्धि) 2/1	= सिद्धि को,
	उवयादि (उवया) व 3/1 सक	= प्राप्त होती है
होदि	(हो) व 3/1 अक	= होती है
सफला	(सफला) 1/1 वि	= सफल
य	अव्यय	= और
किह	अव्यय	= कैसे
पुण	अव्यय	= फिर
णिव्वुदिबीजं	[(णिव्वुदि)-(बीज) 1/1]	= मोक्ष रूपी बीज
सिज्झहिदि	(सिज्झ) भ 3/1 अक	= सिद्ध होगा
अभत्तिमंतस्स	(अभत्तिमंत) 4/1	= अभक्तिवान के लिए
4.		
णाणुज्जोएण[1]	[(णाण)+(उज्जोएण)]	
	[(णाण)-(उज्जोय) 3/1]	= ज्ञान रूपी प्रकाश के
विणा	अव्यय	= बिना
जो	(ज) 1/1 स	= जो (व्यक्ति)
इच्छदि	(इच्छ) व 3/1 सक	= इच्छा करता है
मोक्खमग्गमुवगन्तुं	[(मोक्ख)+(मग्गं)+(उवगन्तुं)]	
	[(मोक्ख)-(मग्ग) 2/1]	= मोक्ष-मार्ग को
	(उवगन्तुं) हेकृ अनि	= जाने के लिए
गन्तुं	(गन्तुं) हेकृ अनि	= जाने के लिए

---

1. बिना के योग में तृतीया विभक्ति का प्रयोग होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कडिल्लमिच्छदि	[(कडिल्लं)+(इच्छदि)]	
	कडिल्लं (कडिल्ल) 2/1	= जंगल को,
	इच्छदि (इच्छ) व 3/1 सक	= इच्छा करता है
अंधलओ	(अंधलअ) 'अ' स्वार्थिक 1/1 वि	= अन्धा
अंधयारम्मि	(अंधयार) 7/1	= अन्धकार में

5.

जह	अव्यय	= जैसे
ते	(तुम्ह) 4/1 स	= तुम्हारे लिए
ण	अव्यय	= नहीं
पियं	(पिय) 1/1 वि	= प्रिय
दुक्खं	(दुक्ख) 1/1	= दुःख
तहेव	अव्यय	= उसी प्रकार (का भाव)
तेसिं	(त) 4/2 सवि	= उन
पि	अव्यय	= भी
जाण	(जाण) विधि 2/1 सक	= जान
जीवाणं	(जीव) 4/2	= जीवों के लिए
एवं	अव्यय	= इस प्रकार
णच्चा	(णच्चा) संकृ अनि	= जानकर
अप्पोवमिवो	[(अप्प)+(उवमिवो)]	
	[(अप्प)-(उवमिव) 1/1 वि]	= आत्म-सदृश
जीवेसु	(जीव) 7/2	= जीवों के प्रति
होदि	(हो) व 3/1 अक	= होता है
सदा	अव्यय	= सदा

6.

सव्वेसिमासमाणं	[(सव्वेसिं)+(आसमाणं)]	
	सव्वेसिं (सव्व) 6/2 स	= समस्त
	आसमाणं (आसम) 6/2	= आश्रमों का
हिदयं	(हिदय) 1/1	= हृदय
गब्भो	(गब्भ) 1/1	= गर्भ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व	अव्यय	= और
सव्वसत्थाणं	[(सव्व) वि-(सत्थ) 6/2]	= समस्त शास्त्रों का
सव्वेसिं	(सव्व) 6/2 स	= समस्त
वदगुणाणं	[(वद)-(गुण) 6/2]	= व्रत व गुणों का
पिंडो	(पिंड) 1/1	= पिण्डरूप
सारो	(सार) 1/1	= सार
अहिंसा	(अहिंसा) 1/1	= अहिंसा
हु	अव्यय	= निश्चित रूप से

7.

जीववहो	(जीववह) 1/1	= जीव-वध
अप्पवहो	(अप्पवह) 1/1	= आत्म-वध
जीवदया	(जीवदया) 1/1	= जीव-दया
होइ	(हो) व 3/1 अक	= होता है
अप्पणो	(अप्पण) 1/1 वि	= आत्म
हु	अव्यय	= निश्चित रूप से
दया	(दया) 1/1	= दया
विसकंटओ	(विसकंटअ) 1/1	= विषकंटक
व्व	अव्यय	= की तरह
हिंसा	(हिंसा) 1/1	= हिंसा
परिहरियव्वा	(परिहर) विधिकृ 1/1	= त्यागी जानी चाहिए
तदो	अव्यय	= इसलिए
होदि	(हो) व 3/1 अक	= होती है

8.

जावइयाइं	(जावइय) 1/2 वि	= जितने
दुक्खाइं	(दुक्ख) 1/2	= दुःख
होंति	(हो) व 3/2 अक	= हैं
लोयम्मि	(लोय) 7/1	= लोक में
चदुगदिगदाइं	[(चदु) वि-(गदि)-(गद) भूकृ 2/2 अनि]	= चारों गतियों में व्याप्त

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सव्वाणि	(सव्व) 2/2 सवि	= सभी को
ताणि	(त) 2/2 सवि	= उनको
हिंसाफलाणि	[(हिंसा)-(फल) 2/2]	= हिंसा के फल
जीवस्स	(जीव) 6/1	= जीव की
जाणाहि[1]	(जाण) विधि 2/1 सक	= जानो

9.

कक्कस्सवयणं	[(कक्कस्स) वि-(वयण) 1/1]	= कर्कश वचन
णिट्ठुरवयणं	[(णिट्ठुर) वि-(वयण) 1/1]	= कठोर वचन
पेसुण्णहासवयणं	[(पेसुण्ण) वि-(हास) वि- (वयण) 1/1]	= चुगली व हास्य वचन
च	अव्यय	= और
जं	अव्यय	= जो
किंचि	अव्यय	= कुछ भी
विप्पलावं	(विप्पलाव) 1/1	= निरर्थक वचन
गरहिदवयणं	[(गरहिद) वि-(वयण) 1/1]	= निन्दित वचन (है)
समासेण	(समास) क्रिविअ 3/1	= संक्षेप से

10.

परुसं	(परुस) 1/1 वि	= कठोर
कडुयं	(कडुय) 1/1 वि	= कड़वा
वयणं	(वयण) 1/1	= वचन
वेरं	(वेर) 2/1	= बैर को
कलहं	(कलह) 2/1	= कलह को
च	अव्यय	= तथा
जं	(ज) 1/1 स	= जो
भयं	(भय) 2/1	= भय को
कुणइ	(कुण) व 3/1 सक	= उत्पन्न करता है
उत्तासणं	(उत्तासण) 2/1	= त्रास को
च	अव्यय	= और

---

1. पिशल, प्राकृत भाषाओं का व्याकरण, पृष्ठ 745

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हीलणमप्पियवयणं	[(हीलणं)+(अप्पियवयणं)]	
	हीलणं (हीलण) 2/1	= तिरस्कार को
	[(अप्पिय) वि-(वयण) 1/1]	= अप्रिय वचन (है)
समासेण	(समास) क्रिविअ 3/1	= संक्षेप से

11.

जलचन्दणस-सिमुत्ताचन्दमणी	[(जल)-(चंदन)-(ससि)-(मुत्ता)-(चन्दमणि) 1/2]	= जल, चंदन, चन्द्रमा, मोती एवं चन्द्रकान्तमणी
तह	अव्यय	= उस प्रकार
णरस्स	(णर) 4/1	= मनुष्य के लिए
णिव्वाणं	(णिव्वाण) 2/1	= तृप्ति/सुख
ण	अव्यय	= नहीं
करन्ति	(कर) व 3/2 सक	= करते हैं
कुणइ	(कर) व 3/1 सक	= करता है
जह	अव्यय	= जैसी
अत्थज्जुयं	[(अत्थ)-(ज्जयु) 1/1 वि]	= अर्थयुक्त
हिदमधुरमिदवयणं	[(हिद) वि- (मधुर) वि-(मिद)-(वयण) 1/1]	= हितकारी, मधुर एवं परिमित वचन

12.

सच्चम्मि	(सच्च) 7/1	= सत्य में
तवो	(तव) 1/1	= तप
सच्चम्मि	(सच्च) 7/1	= सत्य में
संजमो	(संजम) 1/1	= संयम
तह	अव्यय	= तथा
वसे	(वस) व 3/1 अक	= रहता है (रहते हैं)
सया	(सय) 1/2 वि	= सैकड़ों
वि	अव्यय	= ही
गुणा	(गुण) 1/2	= गुण
सच्चं	(सच्च) 1/1	= सत्य
णिबंधणं	(णिबंधण) 1/1	= आधार

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हि	अव्यय	= निश्चित रूप से
य	अव्यय	= हेतुसूचक अव्यय
गुणाणमुदधीव	[(गुणाणं)+(उदधी)+(इव)]	
	गुणाणं (गुण) 6/2	= गुणों का
	उदधी (उदधि) 1/1 ।	= समुद्र
	इव (अव्यय)	= जैसे
मच्छाणं	(मच्छ) 6/2	= मछलियों का
13.		
माया	(माया) 1/1	= माता
व	अव्यय	= की तरह
होइ	(हो) व 3/1 अक	= होता है
विस्सस्सणिज्जो	(विस्सस्स) विकृ 1/1	= विश्वासयोग्य
पुज्जो	(पुज्ज) 1/1	= पूज्य
गुरुव्व[1]	[(गुरु)+(व्व)]	
	(गुरु) 1/1 व्व (अ) = की तरह	= गुरु, की तरह
लोगस्स	(लोग) 4/1	= लोग (लोगों) के लिए
पुरिसो	(पुरिस) 1/1	= व्यक्ति
हु	अव्यय	= निश्चित रूप से
सच्चवाई	(सच्चवाइ) 1/1 वि	= सत्यवादी
होदि	(हो) व 3/1 अक	= होता है
हु	अव्यय	= पादपूरक
सणियल्लओ	[(स) वि -(णियल्ल) 1/1 'अ' स्वार्थिक]	= अपने आत्मीय
व	अव्यय	= की तरह
पिओ	(पिअ) 1/1 वि	= प्रिय
14.		
जह	अव्यय	= जैसे
मक्कडओ	(मक्कड) 'अ' स्वार्थिक 1/1	= बन्दर
धादो	(धा) भूकृ 1/1	= तृप्त हुआ

1. आगे संयुक्ताक्षर होने के कारण गुरू का गुरु हो गया है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वि	अव्यय	= ही
फलं	(फल) 2/1	= फल को
दट्ठूण	(दट्ठूण) संकृ अनि	= देखकर
लोहिदं	(लोहिद) 2/1 वि	= लाल (पके हुए)
तस्स	(त) 4/1 स	= उसके लिए
दूरत्थस्स	(दूरत्थ) 4/1 वि	= दूरस्थित
वि	अव्यय	= भी
डेवदि	(डेव) व 3/1 अक	= कूदता है
जइ	अव्यय	= यद्यपि
वि	अव्यय	= ही
घित्तूण	(घित्तूण) संकृ अनि	= ग्रहणकरके
छंडेदि	(छंड) व 3/1 सक	= छोड़ देता है

15.

एवं	अव्यय	= इस प्रकार
जं	(ज) 2/1 सवि	= जिसको
जं	(ज) 2/1 सवि	= जिसको
पस्सदि	(पस्स) व 3/1 सक	= देखता है
दव्वं	(दव्व) 2/1	= द्रव्य को
अहिलसदि	(अहिलस) व 3/1 सक	= इच्छा करता है
पाविदुं	(पाव) हेकृ	= पाने के लिए
तं	(त) 2/1 स	= उसको
तं	(त) 2/1 स	= उसको
सव्वजगेण	[(सव्व) स- (जग) 3/1]	= समस्त जग से
वि	अव्यय	= भी
जीवो	(जीव) 1/1	= जीव
लोभाइट्ठो	[(लोभ)+(आइट्ठो)] [(लोभ)-(आइट्ठ) 1/1 वि]	= लोभ के आश्रित
न	अव्यय	= नहीं
तिप्पेदि	(तिप्प) व 3/1 अक	= सन्तुष्ट होता है

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

16.

जह	अव्यय	= जैसे
मारुओ	(मारुअ) 1/1	= हवा
पवड्ढइ	(पवड्ढ) व 3/1 अक	= बढ़ती है
खणेण	क्रिविअ	= क्षणभर में
वित्थरइ	(वित्थर) व 3/1 अक	= फैल जाता है
अब्भयं	(अब्भ) 'य' स्वार्थिक 1/1	= मेघ
च	अव्यय	= और
जहा	अव्यय	= जैसे
जीवस्स	(जीव) 6/1	= जीव का
तहा	अव्यय	= उसी तरह
लोभो	(लोभ) 1/1	= लोभ
मंदो	(मंद) 1/1 वि	= मन्द
वि	अव्यय	= भी
खणेण	(खण) क्रिविअ 3/1	= क्षणभर में
वित्थरइ	(वित्थर) व 3/1 अक	= बढ़ जाता है

17.

लोभे	(लोभ) 7/1	= लोभ
य	अव्यय	= वाक्यालंकार
वड्ढिदे	(वड्ढ) भूकृ 7/1	= बढ़ा हुआ होने पर
पुण	अव्यय	= फिर
कज्जाकज्जं	[(कज्ज)+(अकज्जं)] [(कज्ज)-(अकज्ज) 2/1]	= कार्य-अकार्य को
णरो	(णर) 1/1	= मनुष्य
ण	अव्यय	= नहीं
चिंतेदि	(चिंत) व 3/1 सक	= विचारता है
तो	अव्यय	= फिर
अप्पणो	(अप्पण) 1/1 वि	= अपनी
वि	अव्यय	= भी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मरणं	(मरण) 2/1	= मृत्यु को
अगणिंतो	(अगणि) वकृ 1/1	= न गिनता (मानता) हुआ
साहसं	(साहस) 2/1	= कोई भी घोर अपराध
कुणदि	(कुण) व 3/1 सक	= करता है

18.

सव्वो	(सव्व) 1/1 स	= सभी
उवहिदबुद्धी	[(उवहिद) वि-(बुद्धि) 1/1]	= माया से प्रछन्न बुद्धिवाले
पुरिसो	(पुरिस) 1/1	= व्यक्ति
अत्थे	(अत्थ) 7/1	= धन
हिदे	(हिद) 7/1 वि	= छिन जाने पर
य	अव्यय	= और
सव्वो	(सव्व) 1/1 स	= सब
वि	अव्यय	= ही
सत्तिप्पहारविद्धो	[(सत्ति)-(प्पहार)-(विद्ध) 1/1 वि]	= शक्ति प्रहार से घायल
व	अव्यय	= की तरह
होदि	(हो) व 3/1 अक	= होता है (होते हैं)
हिययंमि	(हियय) 7/1	= हृदय में
अदिदुहिदो	[(अदि) वि- (दुहिद) 1/1 वि]	= अत्यन्त दुःखी

19.

अत्थम्मि	(अत्थ) 7/1	= धन
हिदे	(हिद) 7/1 वि	= हरे जाने पर
पुरिसो	(पुरिस) 1/1	= व्यक्ति
उम्मत्तो	(उम्मत्त) 1/1 वि	= पागल
विगयचेयणो	[(विगय) भूकृ अनि- (चेयण) 1/1 वि]	= चेतनारहित
होदि	(हो) व 3/1 अक	= हो जाता है
मरदि	(मर) व 3/1 अक	= मर जाता है
व	अव्यय	= और
हक्कारकिदो	[(हक्कार)-(किद) भूकृ 1/1 अनि]	= हाहाकार करता हुआ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अत्थो	(अत्थ) 1/1	= धन
जीवं	(जीव) 1/1	= प्राण
खु	अव्यय	= निश्चित रूप से
पुरिसस्स	(पुरिस) 6/1	= व्यक्ति का

20.

गन्थच्चाओ	[(गन्थ)-(च्चाअ) 1/1]	= परिग्रह-त्याग
इन्दियणिवारणे	[(इंदिय)-(णिवारण) 7/1]	= इन्द्रियों को (विषयों से) दूर रखने में
अंकुसो	(अंकुस) 1/1	= अंकुश (हाथी को वश में करने वाला हथियार)
व	अव्यय	= जैसे
हत्थिस्स	(हत्थि) 4/1	= हाथी के लिए
णयरस्स	(णयर) 4/1	= नगर के लिए
खाइया	(खाइया) 1/1	= खाई
वि	अव्यय	= ही
य	अव्यय	= और
इन्दियगुत्ती	[(इंदिय)-(गुत्ति) 1/1]	= इन्द्रिय संयम
असंगत्तं	(असंगत्त) 1/1	= असंगता

21.

ण	अव्यय	= नहीं
गुणे	(गुण) 2/2	= गुणों को
पेच्छदि	(पेच्छ) व 3/1 सक	= देखता है
अववददि	(अववद) व 3/1 सक	= निन्दा करता है
गुणे	(गुण) 2/2	= गुणों (की) को
जंपदि	(जंप) व 3/1 सक	= कहता है
अजंपिदव्वं	(अजंप) विधिकृ 1/1	= नहीं कहने योग्य
च	अव्यय	= और
रोसेण	(रोस) 3/1	= क्रोध के कारण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रुद्दहिदओ	[(रुद्द) वि- (हिदअ) 1/1]	= रौद्र हृदयवाला
णारगसीलो	(णारगसील) 1/1 वि	= नारकी
णरो	(णर) 1/1	= मनुष्य
होदि	(हो) व 3/1 अक	= होता है

22.

माणी	(माणि) 1/1	= अभिमानी
विस्सो	(विस्स) 1/1 वि	= द्वेष करने योग्य
सव्वस्स	(सव्व) 4/1 स	= सभी के लिए
होदि	(हो) व 3/1 अक	= होता है
कलहभयवेर-दुक्खाणि	[(कलह)-(भय)-(वेर)-(दुक्ख) 2/2]	= कलह, भय, वैर, दुःखों को
पावदि	(पाव) व 3/1 सक	= पाता है
माणी	(माणि) 1/1	= अभिमानी
णियदं	अव्यय	= नियम से
इह	अव्यय	= इस (लोक) में
परलोए	(परलोअ) 7/1	= पर लोक में
य	अव्यय	= तथा
अवमाणं	(अवमाण) 2/1	= अपमान को

23.

सयणस्स	(सयण) 6/1 वि	= स्वजन का
जणस्स	(जण) 6/1	= (पर) जन का
पिओ	(पिअ) 1/1 वि	= प्रिय
णरो	(णर) 1/1	= व्यक्ति
अमाणी	(अमाणि) 1/1 वि	= मान रहित
सदा	अव्यय	= सदा
हवदि	(हव) व 3/1 अक	= होता है
लोए	(लोअ) 7/1	= लोक में
णाणं	(णाण) 2/1	= ज्ञान

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जसं	(जस) 2/1	= यश
च	अव्यय	= व
अत्थं	(अत्थ) 2/1	= धन को
लभदि	(लभ) व 3/1 सक	= प्राप्त करता है
सकज्जं	(सकज्ज) 2/1	= अपने कार्य को
च	अव्यय	= और
साहेदि	(साह) व 3/1 सक	= सिद्ध करता है

24.

तेलोक्केण	(तेलोक्क) 3/1	= तीनों लोक से
वि	अव्यय	= भी
चित्तस्स	(चित्त) 6/1	= मन की
णिव्वुदी	(णिव्वुदि) 1/1	= तृप्ति (सन्तुष्टि)
णत्थि	[(ण)+(अत्थि)] ण (अव्यय)	= नहीं
	अत्थि (अस) व 3/1 अक	= है
लोभघत्थस्स	[(लोभ)-(घत्थ) 6/1]	= लोभ से ग्रस्त (व्यक्ति) के
संतुट्ठो	(संतुट्ठ) 1/1 वि	= सन्तुष्ट
हु	अव्यय	= किन्तु
अलोभो	(अलोभ) 1/1 वि	= निर्लोभी
लभदि	(लभ) व 3/1 सक	= प्राप्त करता है
दरिद्दो	(दरिद्द) 1/1 वि	= दरिद्र
वि	अव्यय	= भी
णिव्वाणं	(णिव्वाण) 2/1	= निर्वाण को

25.

विज्जू	(विज्जु) 1/1	= बिजली
व	अव्यय	= की तरह
चंचलाइं	(चंचल) 1/2 वि	= चंचल
दिट्ठपणट्ठाइं	[(दिट्ठ) भूकृ अनि-(पणट्ठ) भूकृ 1/2 अनि]	= देखे गये हैं, नष्ट होते
सव्वसोक्खाइं	[(सव्व) सवि-(सोक्ख) 1/2]	= समस्त सुख

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जलबुब्बुदो	[(जल)-(बुब्बुद) 1/1]	= जल के बुलबुले
व्व	अव्यय	= की तरह
अधुवाणि	(अधुव) 1/2 वि	= अस्थिर
हुंति	(हु) व 3/2 अक	= होते हैं
सव्वाणि	(सव्व) 1/2 वि	= समस्त
ठाणाणि	(ठाण) 1/2	= स्थान

26.

रत्तिं	(रत्ति) 2/1	= रात को
एगम्मि	(एग) 7/1 वि	= एक
दुमे	(दुम) 7/1	= वृक्ष पर
सउणाणं	(सउण) 6/2	= पक्षियों के
पिण्डणं	(पिण्डण) 1/1	= समूह
व	अव्यय	= की तरह
संजोगो	(संजोग) 1/1	= संयोग
परिवेसो	(परिवेस) 1/1	= बादलों से सूर्य चन्द्र को ढकने की प्रक्रिया
व	अव्यय	= की तरह
अणिच्चो	(अणिच्च) 1/1	= अनित्य
इस्सरियाणा-धाणारोग्गं	[(इस्सरिय)+(आणा)+(धाण)+(आरोग्गं)] [(इस्सरिय)-(आणा)-(धाण)-(आरोग्ग)1/1]	= ऐश्वर्य, आज्ञा, धनधान्य व आरोग्य

27.

इन्दियसामग्गी	[(इन्दिय)-(सामग्गी) 1/1]	= इन्द्रिय सामग्री
वि	अव्यय	= भी
अणिच्चा	(अणिच्च) 1/1 वि	= अनित्य
संझा	(संझा) 1/1	= संध्या
व	अव्यय	= की तरह
होइ	(हो) व 3/1 अक	= होती है
जीवाणं	(जीव) 6/2	= जीवों की

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मज्झण्हं	(मज्झण्ह) 1/1	= दोपहर
व	अव्यय	= की तरह
णराणं	(णर) 6/2	= मनुष्यों का
जोव्वणमणवट्ठिदं	[(जोव्वणं)+(अणवट्ठिदं)]	
	जोव्वणं (जोव्वण) 1/1	= यौवन
	अणवट्ठिदं (अणवट्ठ) भूकृ 1/1	= अस्थिर (चंचल)
लोए	(लोअ) 7/1	= संसार में

28.

चन्दो	(चंद) 1/1	= चन्द्रमा
हीणो	(हीण) 1/1 वि	= घटता
व	अव्यय	= और
पुणो	अव्यय	= फिर
वड्ढदि	(वड्ढ) व 3/1 अक	= बढ़ता है
एदि	(ए) व 3/1 सक	= आती है
य	अव्यय	= और
उदू	(उदु) 1/1	= ऋतु
अदीदो	(अदीद) भूकृ 1/1 अनि	= बीती हुई
वि	अव्यय	= भी
णदु	[(ण)+(दु)]	
	ण (अव्यय)	= नहीं
	दु (अव्यय)	= किन्तु
जोव्वणं	(जोव्वण) 1/1	= यौवन
णियत्तइ	(णियत्त) व 3/1 अक	= लौटता है
णदीजलगदछिद्दं	[(नदी)+(जल)+(गद)+(छिद्द[1])2/1]	= नदी के जल (प्रवाह में)
	[(नदी)-(जल)-(गद)–(छिद्द) 2/1]	गई हुई छोटी मछली
चेव	अव्यय	= की तरह

---

1. कभी-कभी प्रथमा विभक्ति के स्थान पर द्वितीया विभक्ति का प्रयोग पाया जाता है। (हेम प्राकृत व्याकरण 3-137 की कृति)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

29.

धावदि	(धाव) व 3/1 सक	= दौड़ती है
गिरिणदिसोदं	[(गिरि)-(णदि)- (सोद→सोअ) 1/1]	= पहाड़ी नदी के प्रवाह
व	अव्यय	= की तरह
आउगं	(आउग) 1/1	= आयु
सव्वजीवलोगम्मि	[(सव्व) स- (जीव)-(लोग) 7/1]	= सर्व जीवलोक में
सुकुमालदा	(सुकुमालदा) 1/1	= सुकुमारता
वि	अव्यय	= भी
हायदि	(हाय) व 3/1 सक	= कम होती है
लोगे	(लोग) 7/1	= लोक में
पुव्वण्हछाही	[(पुव्वण्ह)-(छाही) 1/1]	= पूर्वार्ध की छाया
वे	अव्यय	= निश्चय ही

30.

हिमणिचओ	[(हिम)-(णिचअ) 1/1]	= बर्फ के समूह
वि	अव्यय	= भी
व	अव्यय	= की तरह
गिहसयणा-	[(गिह)+(सयण)+(आसण)+(भंडाणि)]	= घर, शय्या,
सणभंडाणि	[(गिह)–(सयण)–(आसण)-(भंड) 1/2]	आसन, भांड
होंति	(हो) व 3/2 अक	= होते हैं
अधुवाणि	(अधुव) 1/2 वि	= अध्रुव
जसकित्ती	[(जस)-(कित्ति) 1/1]	= यश और कीर्ति
वि	अव्यय	= भी
अणिच्चा	(अणिच्च, स्त्री अणिच्चा) 1/1	= अनित्य
लोए	(लोअ) 7/1	= लोक में
संज्झब्भरागो	[(संज्झ)+(अब्भ)+(रागो)]	= संध्या के आकाश की
	[(संज्झ)-(अब्भ)-(राग) 1/1]	लालिमा
व्व	अव्यय	= की तरह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

31.

इन्दियदुद्दन्तस्सा	[(इन्दिय)+(दुद्दन्त)+(अस्सा)] [(इन्दिय)-(दुद्दन्त)-(अस्स) 1/2]	= इन्द्रिय रूपी दुर्दम घोड़े
णिग्घिप्पन्ति	(णिग्घिप्प) व कर्म 3/2 सक अनि	= नियन्त्रित किए जाते हैं
दमणाणखलिणेहिं	[(दम)-(णाण)-(खलिण) 3/2]	= दमनरूपी ज्ञानकी लगाम से
उप्पहगामी	(उप्पहगामी) 1/2	= कुमार्ग गामी
णिग्घिप्पन्ति	(णिग्घिप्प) व कर्म 3/2 सक अनि	= वश में किये जाते हैं
हु	अव्यय	= निश्चित रूप से
खलिणेहिं	(खलिण) 3/2	= लगाम द्वारा
जह	अव्यय	= जैसे
तुरया	(तुरय) 1/2	= घोड़े

32.

झाणं	(झाण) 1/1	= ध्यान (रूपी)
कसायरोगेसु	[(कसाय)-(रोग) 7/2]	= कषाय रूपी रोगों में
होदि	(हो) व 3/1 अक	= होता है
वेज्जो	(वेज्ज) 1/1	= वैद्य
तिगिछदे	(तिगिछ) व 3/1 सक	= चिकित्सा करता है
कुसलो	(कुसल) 1/1 वि	= कुशल
रोगेसु	(रोग) 7/2	= रोगों में
जहा	अव्यय	= जिस प्रकार
वेज्जो	(वेज्ज) 1/1	= वैद्य
पुरिसस्स	(पुरिस) 6/1	= व्यक्ति के
तिगिछओ	(तिगिछअ) 1/1	= चिकित्सक
कुसलो	(कुसल) 1/1	= कुशल

33.

झाणं	(झाण) 1/1	= ध्यान
विसयछुहाए	[(विसय)-(छुहा) 7/1]	= विषयरूपी भूख में
य	अव्यय	= और
होइ	(हो) व 3/1 अक	= होता है

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अण्णं	(अण्ण) 1/1	= अन्न
जहा	अव्यय	= जैसे
छुहाए	(छुहा) 7/1	= भूख में
वा	अव्यय	= अथवा
झाणं	(झाण) 1/1	= ध्यान
विसयतिसाए	[(विसय)-(तिसा) 7/1]	= विषयरूपी प्यास में
उदयं	(उदय) 1/1	= पानी
उदयं	(उदय) 1/1	= जल
व	अव्यय	= जैसे
तण्हाए	(तण्हा) 7/1	= प्यास में

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ - 1

वज्जालग्ग

क्रम संख्या	वज्जालग्ग गाथा संख्या	क्रम संख्या	वज्जालग्ग गाथा संख्या
1.	108	21.	263.1
2.	113	22.	264
3.	114	23.	266
4.	115	24.	267
5.	116	25.	579
6.	117	26.	580
7.	119.1	27.	581
8.	138	28.	585
9.	139	29.	665
10.	140	30.	672
11.	141	31.	678
12.	146	32.	682
13.	154	33.	685
14.	163	34.	686
15.	164	35.	687
16.	257	36.	688
17.	258	37.	689
18.	260	38.	691
19.	262	39.	692
20.	263	40.	705

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रम संख्या	वज्जालग्ग गाथा संख्या	क्रम संख्या	वज्जालग्ग गाथा संख्या
41.	728	46.	750
42.	731	47.	751
43.	732	48.	753
44.	746	49.	755
45.	748	50.	757

पाठ - 2
गउडवहो

क्रम संख्या	गउडवहो गाथाक्रम	क्रम संख्या	गउडवहो गाथाक्रम
1.	62	12.	885
2.	63	13.	887
3.	64	14.	902
4.	68	15.	907
5.	70	16.	911
6.	73	17.	913
7.	76	18.	917
8.	78	19.	919
9.	860	20.	972
10.	866	21.	976
11.	884	22.	983

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पाठ - 3
दशवैकालिक

क्रम संख्या	दशवैकालिक सूत्रक्रम	क्रम संख्या	दशवैकालिक सूत्रक्रम
1.	9	12.	274
2.	10	13.	435
3.	63	14.	450
4.	64	15.	472
5.	65	16.	487
6.	271	17.	498
7.	418	18.	502
8.	470	19.	516
9.	473	20.	543
10.	474	21.	573
11.	477	22.	575

पाठ - 4
आचारांग

क्रम संख्या	आचारांग सूत्रक्रम	क्रम संख्या	आचारांग सूत्रक्रम
1.	254	4.	262
2.	258	5.	263
3.	260	6.	265

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रम संख्या	आचारांग सूत्रक्रम	क्रम संख्या	आचारांग सूत्रक्रम
7.	266	18.	295
8.	273	19.	296
9.	274	20.	302
10.	278	21.	305
11.	279	22.	312
12.	280	23.	313
13.	281	24.	314
14.	282	25.	315
15.	283	26.	321
16.	285	27.	322
17.	286		

पाठ - 5
प्रवचनसार

क्रम संख्या	गाथा क्रम	क्रम संख्या	गाथा क्रम
1.	1/7	7.	1/68
2.	1/13	8.	1/69
3.	1/20	9.	1/76
4.	1/27	10.	2/58
5.	1/44	11.	2/65
6.	1/67	12.	2/87

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रम संख्या	गाथा क्रम
13.	2/101
14.	2/102
15.	2/104

पाठ - 6
भगवती आराधना

क्रम संख्या	गाथा क्रम	क्रम संख्या	गाथा क्रम
1.	349	15.	861
2.	774	16.	862
3.	754	17.	863
4.	777	18.	864
5.	783	19.	865
6.	796	20.	1175
7.	800	21.	1374
8.	806	22.	1385
9.	836	23.	1387
10.	838	24.	1400
11.	841	25.	1726
12.	848	26.	1729
13.	846	27.	1730
14.	860	28.	1731

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रम संख्या	गाथा क्रम
29.	1732
30.	1736
31.	1845
32.	1910
33.	1911

पाठ - 7
अर्हत प्रवचन

क्रम संख्या	गाथा क्रम	क्रम संख्या	गाथा क्रम
1.	19/1	6.	19/23
2.	19/13	7.	19/26
3.	19/14	8.	19/27
4.	19/21	9.	19/49
5.	19/22	10.	19/53

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. Apabhraṁśā of Hemacandra	:	Dr. Kāntilāl Baldevrām Vyās Prākṛta Text Society, Ahmedābād
2. अपभ्रंश-हिन्दी कोश, भाग 1-2	:	डॉ. नरेशकुमार इण्डो-विजन प्रा. लि. II ए 220, नेहरू नगर, गाजियाबाद
3. अभिनव प्राकृत व्याकरण	:	डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री तारा पब्लिकेशन, वाराणसी
4. अर्हत प्रवचन	:	सम्पादकः पण्डित चैनसुखदास न्यायतीर्थ जैनविद्या संस्थान, दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी, राजस्थान
5. आचारांग चयनिका	:	सम्पादक: डॉ. कमलचन्द सोगाणी (प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर)
6. आयारांगसुत्तं	:	सम्पादकः मुनि जम्बूविजय (श्री महावीर जैन विद्यालय, मुम्बई)
7. आचारांगसूत्र	:	सम्पादकः मधुकर मुनि श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर (राज.)
8. आयारो	:	सम्पादकः मुनि नथमल (जैन विश्व भारती, लाडनूं)
9. Introduction to Ardha-Māgadhī	:	A.M. Ghātage School and College Book Stall Kolhāpur.
10. कातन्त्र व्याकरण	:	गणिनी आर्यिका ज्ञानमती दिगम्बर जैन त्रिलोक शोध संस्थान हस्तिनापुर, मेरठ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

11. गउडवहो	:	वाक्पतिराज सम्पादकः प्रो. नरहर गोविन्द प्राकृत ग्रन्थ परिषद्, अहमदाबाद
12. णायधम्मकहा	:	सम्पादकः शोभाचन्द्र भारिल्ल श्री आगम प्रकाशन समिति, ब्यावर (राज.)
13. दशवैकालिक चयनिका	:	सम्पादक: डॉ. कमलचन्द सोगाणी (प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर)
14. दशवैकालिक सूत्र (दसवेयालियसुत्तं)	:	सम्पादकः मुनि श्री पुण्यविजयजी एवं पण्डित अमृतलाल मोहनलाल भोजक (श्री महावीर जैन विद्यालय, मुम्बई)
15. दसवेयालियं	:	सम्पादकः मुनि नथमल (जैन विश्व भारती, लाडनूं)
16. पाइअ-सद्द-महण्णवो	:	पण्डित हरगोविन्ददास त्रिकमचन्द सेठ प्राकृत ग्रन्थ परिषद्, वाराणसी
17. पाइयगज्जसंगहो	:	सम्पादकः डॉ. राजाराम जैन प्राच्य भारती प्रकाशन, आरा
18. प्रवचनसार	:	श्रीमत् कुन्दकुन्दाचार्य अनुवादक– ए.एन. उपाध्ये श्री परमश्रुत प्रभावक मण्डल श्रीमद् राजचन्द्र आश्रम, अगास
19. प्राकृत-प्रबोध	:	डॉ. नेमिचन्द्र शास्त्री चौखम्भा विद्याभवन, वाराणसी–1
20. प्राकृत भाषाओं का व्याकरण	:	डॉ. आर. पिशल बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना
21. प्राकृत मार्गोपदेशिका	:	पण्डित बेचरदास जीवराज दोशी मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली
22. प्रौढ़ रचनानुवाद कौमुदी	:	डॉ. कपिलदेव द्विवेदी विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

23. भगवती आराधना	:	श्री शिवकोटि आचार्य प्रकाशचन्द शीलचन्द जैन जौहरी 1266, चाँदनी चौक, दिल्ली-6
24. वज्जालग्ग	:	जयवल्लभ सम्पादकः प्रो. माधव वासुदेव पटवर्धन (प्राकृत टेक्स्ट सोसाइटी, अहमदाबाद-9)
25. वज्जालग्ग में जीवन मूल्य	:	सम्पादक: डॉ. कमलचन्द सोगाणी (प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर)
26. वाक्पातिराज की लोकानुभूति	:	सम्पादक: डॉ. कमलचन्द सोगाणी (प्राकृत भारती अकादमी, जयपुर)
27. वृहद् अनुवादचन्द्रिका	:	चक्रधर नौटियाल 'हंस' मोतीलाल बनारसीदास, फेज-1, दिल्ली
28. हेमचन्द्र प्राकृत व्याकरण भाग 1-2	:	व्याख्याता– श्री प्यारचन्दजी महाराज श्री जैन दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय मेवाड़ी बाजार, ब्यावर

****

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org